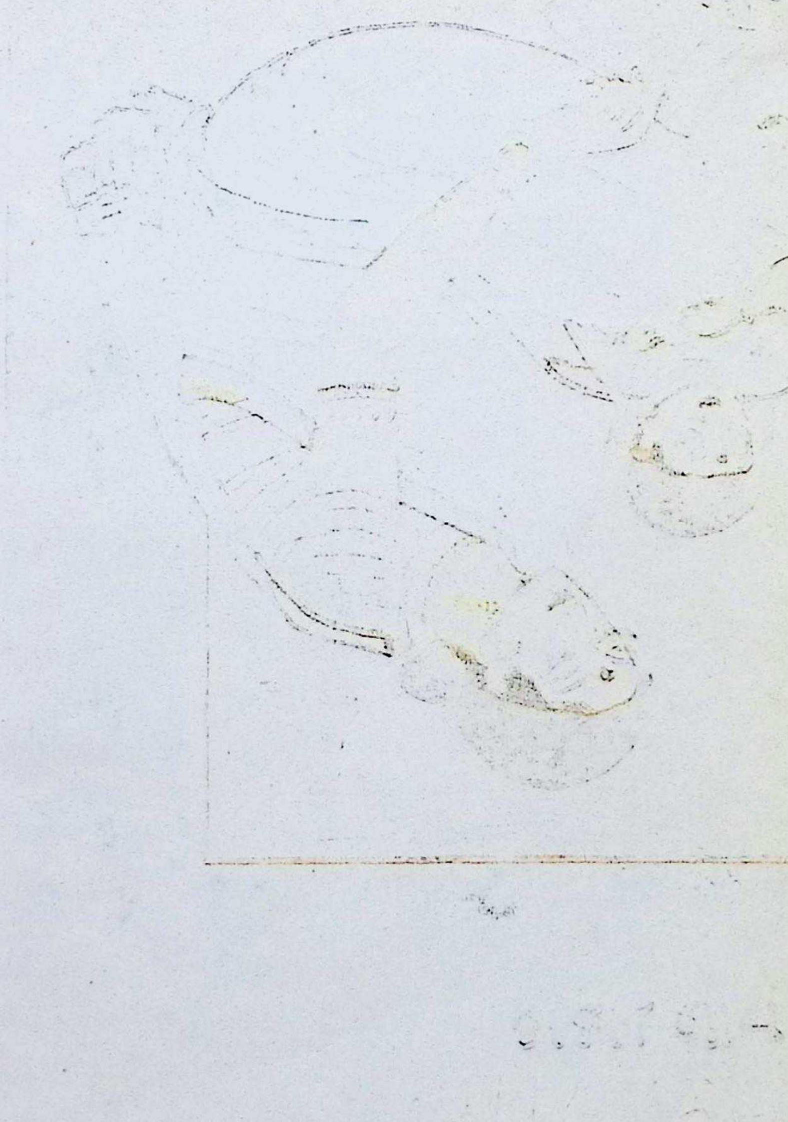
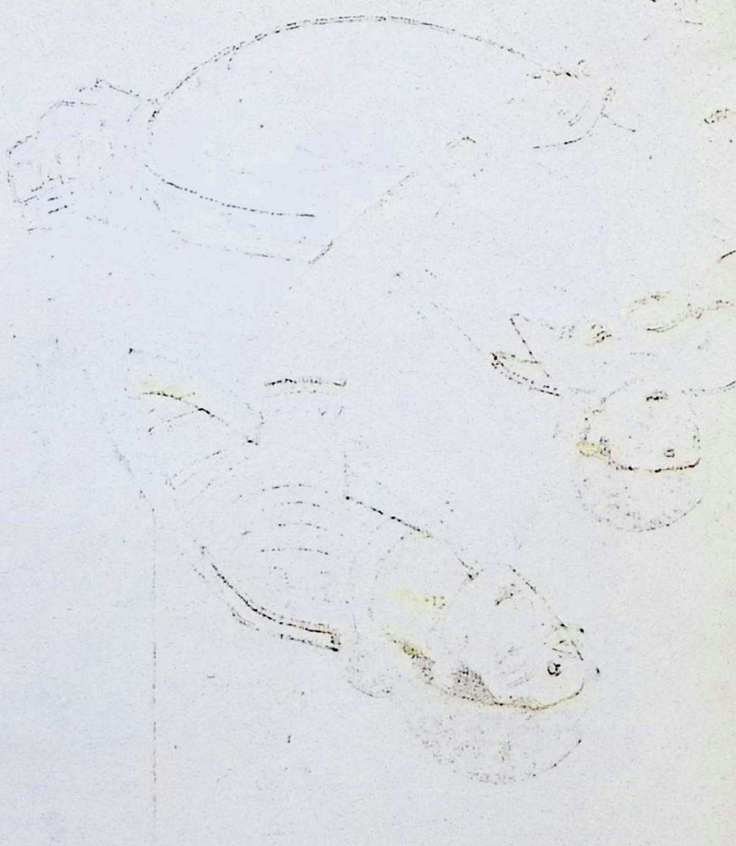
सुखदेव सिंह सोरठ



...रिया खेला





केसरिया वेला

हिन्दी प्रचारक संस्थान
वाराणसी • कलकत्ता • लखनऊ

केसरिया वेला

रचयिता

शुकदेव सिंह 'सौरभ'

KESARIYA VELA

Composed By

Shukdeo Singh 'Saurabh'

●

प्रकाशक

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो० बाक्स नं० १०६, पिशाचमोचन,

वाराणसी–१ (उ० प्रदेश)

मूल्य ४·००

●

प्रथम संस्करण

अप्रैल, १९७३

●

मुद्रक

दयानन्द 'सतीश'

सीमा प्रेस

ईश्वरगंगी, वाराणसी ।

पूर्वकथन

जिसका सादृश्य यह विस्तीर्ण धरा कभी अपने अंचल में धारण न कर सकी उस राजस्थान तथा केसरिया-विषयक ये स्वल्प कविताएँ उसके अवर्ण्य, अनन्त गौरव की अति स्वल्प झाँकी मात्र प्रस्तुत करती हैं। जब तक नैतिक गुण, शौर्य एवं बलिदान मानव के साथ-साथ मानव में स्थित है वे अपना आधिपत्य तथा वशीकरण पुरुष और स्त्री पर स्थिर रक्खेंगे, चाहे वे किसी भी जाति, मत, देश तथा काल के हों। अपेक्षाकृत निर्बल तथा कोमल वर्ग स्त्रियों से जो वृत्तांश उसके इतिहास में अभिनीत हुआ वह नारी जाति की प्रकृति और साहस से परे है और पुरुष अभिनीत वृत्तांश से तनिक भी कम महान, शौर्यपूर्ण, कम स्थायी तथा हृदयपूर्ण नहीं है। उन दोनों ने अपने चिह्न वहाँ बनाये जहाँ, यहाँ के अतिरिक्त अन्यत्र, इस मर्त्यशील धरा से उठते हुए कोई भी स्मारक कभी नहीं पहुँच सके।

दिन के विस्तृत प्रकाश एवं उजेली तथा अँधेरी रातों में मेरी आत्मा ने पगडंडियों पर, चौड़ी, पतली घाटियों में, दर्रों और जंगलों में, मैदानों, चरागाहों में छायाओं और घरों में तथा स्मारकों के चतुर्दिक दूर तक सभी ओर भ्रमण किया है और कृतकृत्यता पूर्वक उनसे वार्तालाप किया है, और केवल उसी प्रकार सभी अलौकिक घटनाओं को देखा है जो जैसे वहाँ वस्तुतः घटित हुई वह रण सज्जा, वह युद्ध का ठाट ! वहाँ जाते हुये कुछ सैनिक, वहाँ गुप्त रूप में से स्थित कुछ सैनिक, वहाँ गोरा और बादल, वहाँ पुत्ता और जयमल !!! वहाँ वेग से मचकती मचलती सात सौ सवारियाँ !! वहाँ उनचासों पवन प्रेरित झण्डे की फहर में उच्च गगन में जौहर ज्वाला की धू-धू वहाँ चुड़ावत महारुद्र अपनी वीर अनुरक्त पत्नी हाड़ी रानी के मण्डित शीश की मुण्डमाला पहने उनचासों पवन-प्रेरित झण्डे की फहर में रण-प्रयाण और रण करते हुए !!! वहाँ सभी कष्टों, सासतों और कसौटियों के समक्ष—राजनैतिक तथा दैविक अडिग रूप में अड़े हुए मातृभूमि की मुखलाली अभिरक्षित रखने के लिये स्वातंत्र्य का उत्साहपूर्ण संग्राम करते और अद्‌भुततः गौरवान्वित ध्वजा के अपूर्व गौरव प्रदान करते हुए महाराणा प्रताप !!!

राजस्थान के महान इतिहासकार कर्नल टॉड ने जो वहाँ रहे और लम्बी, कष्टपूर्ण खोज के बाद उसका इतिहास लिखा, एक ही बार सदा के लिये दृढ़ता पूर्वक कह दिया कि राजपूत जाति शौर्य को समस्त विश्व में अपनी समता नहीं

रखती ! अयोध्या के तुलसीदास तथा ब्रज के सूरदास थे राजस्थान के कर्नल टॉड शरीर, मन और आत्मा से बिलकुल सच्चे राजपूत हो गए थे। वहाँ से इंगलैण्ड विदा होते समय, पूर्णतः केसरिया में सज्जित, उन्होंने कहा, "मैं कहीं भी जाऊँ, कोई भी समय हो, उदयपुर घाटी का दृश्य कुछ भी मेरे मानस से मिटा नहीं सकता।" और वह मानव आत्मा कहाँ है जो इस भूमि अथवा इसके इतिहास के सम्पर्क में आ कुछ आत्म-प्रेरित कर्नल की ही भाँति न फूट पड़ेगी ?

मानव को मानव होने से लाभ ही क्या यदि वह शूर-वीर की भाँति जीता और अमर होकर मरता नहीं। लेकिन सच्चे शौर्य तथा वीरता को सीखने और कर्तव्य पालन करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वह जितनी ही अभय है उतनी ही सहानुभूति पूर्ण, क्षमा और विवेकीशील भी, और 'युद्ध में सिंह और संधि अथवा शान्ति में मेमना' की बड़ी कहावत से अच्छी तरह चरितार्थ होती है। यही वह अमर भूमि है जो ऐसे शौर्य एवं साहस के उदाहरणों से भरी हुई है, वह शौर्य तथा साहस जो अपना पूर्ण विकसित तथा अशेष रूप यहीं पाते हैं। यदि सच्ची अभिलाषा को वर माँगना हो तो वह निश्चय ही यही वर माँगेगी।

राना का राजस्थान वही
हर युग का साकी हो मेरा !!!
या
इसी पूत केसरिया में हो
मगन मनोरम धरा, गगन !!!

यही वर अपनी विनम्र भेंट के रूप में, बिना माँगे, मैं आपको अर्पित करता हूँ, मेरे प्रिय पाठको !

विषय-सूची

: १ :

नमस्कार

इस धरा धाम के अमर धाम,
अनुपम, अजेय, अविकल, अकाम।
तुम एक लिंग के सिंहासन,
संभव न कहीं तुमसा ललाम ॥

फर-फर 'केसरिया' अमर ध्वजा !!
जगमग जौहर का साज सजा !!
सिरजा राखी का व्रत ललाम !!
तुम धन्य-त्रिवेणी अमर धाम !!

जावरमाला – अर्वली – गान !!
चित्तौड़ दुर्ग की अमर आन !!
प्रहरी वृक्षों के प्रिय वितान !!
प्यारी घासों के व्रत महान !!

चेतन सा जड़ की, अह उनके
भावों की अद्भुत लहरों की !!
जागृति सोयी समाधियों की !!
गौरव गाथा खण्डहरों की !!

हंसते-हंसते रण का प्रशायन !!
हंसते-हंसते प्रिय-चिता-दहन !!
हे मुण्डमाल ! ताण्डव नर्तन !
तुम शाश्वत, संविद, चिरनूतन !!

अगणित पीढ़ियां हवन होकर,
वेदी पर हुलसित बलि चढ़कर,
क्या जानें कितनी बार अमर
कण-कण में शोणित में रंग कर,

रक्खी जननी की मुख लाली,
व्रत ? पूत प्रतिज्ञा है पाली !!
लगता विभूति ने कुछ विभूति
केवल तुमसे ही है पाली !!

गा दे आनों के गान अमर,
हर जर्रे से लोहू तर-तर
बह जाय : भरे अरमान अमर,
जर्रे-जर्रे हैं प्राण अमर !!

तुम स्वतन्त्रता के स्रोत अमर,
कविता के उद्गम, अक्षर स्वर !!
तुम युग-युग के मनु, मन्वन्तर,
तुम शेषशयन, सुषमासागर !!

जावकवेला, जौहरवेला,
पालक, प्रलयंकर, सृष्टिकार,
अमिताभ क्षीरखेला तुमको
केसरियावेला नमस्कार !!!

●

: २ :

अभिलाषा

यदि राज मुकुट देना हो तो
वनवासी राणा का देना !
देना हो सोना-चाँदी तो
बस भामाशाह बना देना !

करना हो कहीं पुरोहित तो
देना वह जीवन की लाली—

टकरा न जायँ शक्ता-प्रताप,
टकराये जीवन की प्याली !

पागल फरहाद बनाना हो
तो शीरीं हो हाड़ीरानी :
सिर की माला पहने थिरकूँ
रण के मजार में अभिमानी !

सन्यास मुझे इनकार नहीं,
केसरिया हो अपना बाना !
तलवार कमण्डल ले घूमूँ,
मठ हो मैदान, गुरू राना।

इनकार अमर होना न मुझे,
यदि हो वह जौहर के क्षण में !
क्या चाह और हो सकती है
जो गोरा-बादल हूँ रण में ?

मैं मुक्ति नहीं, बंधन चाहूँ,
'राखी' का खाकी हो मेरा !
युग-युग का राजस्थान वही !
हर युग का साकी हो मेरा !

●

: ३ :

चाह नहीं

चाह नहीं सुरबालाओं को
सुरतरु होकर पौढ़ाऊँ,
चाह यही भूखे शिशुओं को
अपने अंक सुला पाऊँ !

चाह नहीं मखमली घास हो
नंदनवन में लहराऊँ,
चाह यही भूखे राणा की
रोटी में पिसता जाऊँ

चाह नहीं शाही महलों में
युग का वैभव दिखलाऊँ,
चाह यही कुछ घड़ियों की ही
हल्दी घाटी हो जाऊँ!

चाह नहीं चन्दनचर्चित हो
सुख-शय्या पर अलसाऊँ,
चाह यही हंस-हँस जौहर की
लपटों में ही लिपटाऊँ!

चाह नहीं फूलों के गजरे
प्रिय को नित्य सजा लाऊँ,
चाह यही निज सिर की माला
एक बार पहना जाऊँ!

चाह नहीं कुछ स्वर्ग, मुक्ति की,
विजय सभी हंस-हँस हारूँ;
सारा जीवन सारा वैभव
राणा के प्रण पर वारूँ!

चाह नहीं आजादी लेकर
आजादी का सुख पाऊँ,
यह यही हो आजादी की
राह वतन पर बिछ जाऊँ!

: ४ :

स्वर्ग और संसार के नागरिक

"क्षण पुलकित, क्षण मुसकाते हो,
घड़ी एक दृग मूँदे मौन।
दृग खुलते तो टप-टप आँसू
गिरने लगते—तुम हो कौन?

"मैं हूँ स्वर्ग लोक का वासी,
कुछ दिन मिला धरा का वास।
कहाँ रहूँ मैं?—ज्ञात नहीं है
इस जग का कोई इतिहास?"

"जिसकी स्मृति में भूला हूँ मैं,
स्वर्ग जहाँ लगता उपहास;
प्राणतंत है जहाँ धरा का,
देव! करो तुम वहीं निवास।"

"सुख - सुषमा-समृद्धि-राशि जो
नित्य अमरता का शुभ धाम,
उसके आगे ध्वस्त धरा क्या;
इसमें क्या है स्वर्ग-ललाम?"

"इसी धरा पर ऐसे धन हैं
जिन्हें न स्वर्ग सका पहचान:
कहाँ स्वर्ग में केसरिया है
जिसे पहन नर की सन्तान

"दर्प और भय महा मृत्यु का
कर देती है चकनाचूर;
और अमरता बलिहारी हो
चूम-चूम लेती पद-धूर?

"कहाँ स्वर्ग में वह केसरिया
जिसमें है अद्भुत उपचार:
मलयज शीतल ज्वाला लगती
और क्षार हो जाता प्यार?

"कहाँ पद्मिनी साथ स्वर्ग में
लाखों सतियाँ होती भस्म:
गगन-चुम्बिनी-चिता लगाकर
जौहर का करती हैं रस्म?

"कहाँ रक्त से वहाँ सिंची है
कण-कण धरती भरे हुलास—
सो भी कितनी बार—कहाँ है
अमर लोक का यह इतिहास?

"नंदनवन की घासों में है
घी-घेवर की कहाँ मिठास,
जिसकी रोटी खाकर उमड़ा
आजादी का चिर उच्छ्वास?

"वनवासी के बच्चों को क्या
माँ से प्यारे अपने अंक
सुरतरु ने भी कभी सुलाया
लोरी गा गा मधुर अशंक?

"कहाँ वहाँ बनवासी होंगे,
इन्द्रासन होगा इनकार?
कहाँ वहाँ किन उत्सर्गों पर
स्वांग लगेगा स्वर्ग-विहार?

"जंगल, पर्वत, सागर, सोते
कहाँ स्वर्ग में हुए मगन
आजादी के गाने गाते,
आजादी की ले धड़कन?

"कहाँ अर्वली, हल्दीघाटी,
कहाँ वहीं होगा चित्तौर;
ऊँचे विजयस्तम्भ बोलते,
समाधियों के सूने ठौर?

"कहाँ अप्सराओं ने हँसकर
अलका के कंचन आगार
बाँध अलक में पत्र दिया है,
काट हाथ निज सिर उपहार?"

... .

"अरे बसा वह धाम कहाँ है,
क्या है, प्रिय! उसका शुभ नाम?
वहीं रहूँगा युग–युग तक मैं,
सुना न ऐसा लोक ललाम!"

"राम वंशधर बापारावल,
वे, उनकी राणा सन्तान
शासक हैं उस स्वर्गभूमि के,
अमर नाम है राजस्थान!!

नन्दन, अलका, मुक्ति न वारूँ
क्षण भर करके उसका ध्यान?
एक बार बरदान मिले तो
अग–जग कर दूँ राजस्थान!

●

: ५ :

जीवन-श्वास

"क्या तुम भी विश्राम ले रहें
पुलक-पुलक कर पवन! यहाँ?
छाया की माया में दिखता
भवविभूति का भवन यहाँ!

"इंगित करती हैं विचित्र सी
यहाँ दिशायें दिव्य विमल।
विस्फूर्जित उजियाले से है
भरा हुआ उनका अंचल।

"अद्भुतसा रोमांच हो रहा,
दृग खुलते प्रसरित होकर।
शर ले उठती मन की ढीली
प्रत्यञ्चा प्रतनित होकर।

"नाच-नाच उठती है किरणें,
झूम झूम - उठते तरुवर।
कौन कहानी कहते है ये
मानव ममता में घुलकर ?

"यहाँ कल्पना जगमग जगमग
ललित लास अद्भुत करती,
अरुण बिम्बसी ऊपर उठती
फूट किरण सी नभ भरती।

"मौन रम रही कवि की आत्मा
कविता के नंदन कानन।
जाने किस. गौरव गरिमा में
मुग्ध हुआ जाता है मन।

"लगता तृण पर कमलासन में
अस्थि मात्र कायापंजर
यहीं कहीं है अखिल शौर्य ही
चिंतन में डूबा जी भर--

"जिस पर होती बार बार है
अखिल अमरता बलिहारी,
और विकल्पित हो उठती हैं
बनस्थली रह रह सारी।

"नव विस्फूर्जन फूट-फूट कर
अमर समर का निकल रहा :
कौन मंत्र यह महाकाल का
महाकाल है मचल रहा ?

"उषा और संध्या में घोले
केसरिया में रँगा हुआ
एक नया संसार यहाँ है
अमर विजय में पगा हुआ।"

"पथिक ! न क्यों मैं भी थक जाऊँ,
साँस जगत को देता हूँ।
यहीं विपुल विश्राम, यहीं से
मुक्त साँस मैं लेता हूँ।

"यही अर्वली का पर्वत है !
यही अर्वली का जंगल !!
यहीं महाराणा प्रताप की
लगी अखण्ड समाधि अचल !!"

: ६ :

जौहर

प्रलयघनसा उमड़ आया
विपुल दल सुल्तान का।
करेगा चितौड़ को यह
शून्य दृश्य श्मशान का ?

रूप यह दुर्वासना का
है अलाउद्दीन की।
ध्वंस के धिक्कार पर भी
वह कदापि न जा सकी।

सोच लो सुल्तान, पल धर!
कृत्य क्या तू कर रहा?
अखिल मानव जांति को तूं
क्यों कलंकित कर रहा?

पद्मिनी की प्राप्ति का जो
स्वप्न तू हैं देखता,
व्यर्थ वह, सुन रौद्र साख
और ही जाता जता!

पद्मिनी का निरा शव भी
सुलभ हो सकता नहीं।
मुझे दिखता तुझे फिर भी
होश आ सकता नहीं।

पूत 'राखी' मिली तुझको,
यह सुलभ बहनत्व लो।
राख भी पाओ न शायद;
स्नेह का अमरत्व लो।

... ...

प्रलयमेघों से घिरी द्रुत
उड़ी केसरिया ध्वजा!
दुर्ग का ऊंचा कंगूरा
और ऊंचा सा सजा!

विविध वाद्यों में जुझारू
गीत रव होने लगा।
सभी स्रोतों, निर्झरों का
वेग व्याकुल हो जगा।

झनझनाने लगे अद्भुत
हुलस अस्त्रों के हृदय।
दमकते ले आब नूतन,
ध्वनित रव कहता विजय।

उमँगते श्रृंगार, जावक
बीचियों से भर गया।
रंग केसरिया गगन में
गीत ध्वनि सा भर गया।

सभी राजस्थान का लो
देख लो मेवाड़ का
रंग बदला एक क्षण में
झाड़ औ झंखाड़ का।

इस विजय पर वीर भू को
परखने आते प्रलय,
काल की निष्ठुर कसौटी,
ध्वंस का ले ले प्रणय।

पर चकित हरबार इसका
रंग चढ़ता देखकर।
अमरता इसकी बनी किस
सोमरस को शेष कर।

... ...

विकल संध्या, केश बिखरा
गगन से आई उतर!
रण-शिविर में मंत्रणा नव
हुई विविध विमर्श कर

हवन का नव कुण्ड बनकर
हवन की आयोजना
हुई स्वाहा में सुधामय
एक अद्भुत सर्जना।

सज गयीं क्षत्राणियाँ सब
सोलहों श्रृंगार कर
पुनः पुरुषों को सजाया
अस्त्र-शस्त्र प्रशस्त कर।

लगा पढ़ने मंत्र ऋत्विज्
आहुती होने लगी।
सभी प्रमदा, पुरुष जन की
अर्चना चढ़ने लगी।

पूत सुरभित धूम्र का नभ
छा गया कुछ गूँजता :
गीत ही उल्लास अनुपम
प्रति हृदय का गूँजता।

हृदय की शुभ कामनायें
साकला के वेश में
हो रही थी आहुती नव
ज्योति के संदेश में।

देर तक होकर हुआ वह
पूत हवन समाप्त जब :
भूमिका लिख गयी अनुपम
ग्रंथ की अमिताभ, तब

मुख्यतम यजमान राणा
तथा रानी पद्मिनी
पुलक बोले—"इस धरा की
वीर - गाथा गर्विणी।

इसे हम नर - नारियों ने
सर्वदा अर्पण किया
प्राण, प्रेम, सुहाग, श्री, सुख
हुलस जीभर है दिया।

सभी कुछ नश्वर यहाँ है
कृति अनश्वर है यही।
विश्व के कल्याण का शुभ
पथ सनातन है यही।

सर्वश्रेष्ठ, अमूल्य, सुन्दर
वस्तु जीवन जगत में।
और देने के लिए हैं
न्याय हित उत्सर्ग में।

विश्व की शुभ मान्यताओं,
न्यायगत अधिकार हित
व्यष्टि और समष्टि जीवन
हो समर्पित सुखसहित।

जीव परमात्मा अमृत में
बिन्दु सिन्धु अगाध में
इसी विधि जाता सुभग निज
चरम लक्ष्य विराट में।

है हमारी आन जीवन
यही चिर रक्षित अभय।
इसी से आई हमारे
भाग में निश्चित विजय।

दान का प्रतिदान हमने
कभी सोचा ही नहीं।
पर अमरता कब स्वयं पद
चूमने आयी नहीं?

मर्त्य की इस अमरता पर
स्वर्ग तो जाता लजा
अप्रतिम अध्याय हम जग-
कृत्य में जाते सजा।

और जो भी अमरता है
है कहानी मात्र सी।
मर्त्य के सौभाग्य में ही
है अमरता उर्वशी।

"अग्नि, रण की दो शिखाएँ
प्रज्वलित होंगी अभी।
प्रथम में विरांगनाएँ
वीर जन पर में सभी,

हर्ष से उत्सर्ग होंगे
शौर्य अनुपम छोड़कर।
कुचल दें दुर्वृत्ति अरि की
तोड़ - मोड़ मरोड़ कर।"

....

हुई जय - जय ध्वनि महा शिव
एक लिंग अनन्त की !!
मुख विभा भवितव्यता की
तिमिर - व्रीड़ा में ढकी।

दुर्ग - आंगण में प्रलय की,
पर प्रणय की प्रिय चिता
लगी सजने स्वस्ति अद्‌भुत
वीर - गाथा संहिता।

दुर्ग सी ऊँची, शिखर पर
प्रमुद आत्मोत्सर्ग के
चिता ऐसी कब सजी थी
कृत्य में इस विश्व के?

अमरता की यह निसेनी,
स्वर्ग का सोपान यह
कब सजा था, कब हुआ था
धरा का आह्वान यह?

अजब हलचल हो रही थी
प्रकृति, मानव के हृदय।
कौन मख - बेला करेगी
ज्योति नव जग में उदय?

यह लगी फटने विभामुख
जगमगायेगा अभी।
पर विभा नवएक होगी
जो न ज्वलित हुई कभी।

....

सनक चला सन सन सन सन
हवन - गंध कर पान पवन।
मत्त स्पर्शकर खर धारों को
बजा दिया झन झन झन झन।

क्या जानें किस अतुल वेग से
केसरिया को लहराया!
महा तुमुलध्वनि ने अम्बर के
अन्तराल को थहराया!

स्वर्ग ध्वजा का अभिनन्दन कर
एकलिंग का आह्वाहन,
सुभग सुसज्जित वीर विभाओं,
ललनाओं का आलिंगन,

तड़ित वेग से खोल दुर्ग का
द्वार वीर गढ़ से बाहर
निकल पड़े वातूल वेग से
रण ताण्डव करने नाहर।

भभक भभक कर भालों में तन,
तमक तमक तलवारों में
झहर झहर झंझावातों में
सन सन कर खर धारों में,

पैर न धरती पर धर ऐसा
ताण्डव नृत्य किया किसने?
प्रलय, कयामत का कब ऐसा
रौद्र रूप देखा किसने?

सब ओर यही रव होता था
काली लो निज खप्पर भर लो !
हम खेल रहे शोणित होलो,
लो जी भर भर मज्जन कर लो !

इतनी रणकाली संगर में !
जो क्षत्राणियाँ किले में थीं
प्रत्येक वीर के साथ वही
काली कराल संगर में थीं।

प्रत्येक वीर अरि - दल कृतांत,
भीषण प्रलयंकर शंकर था।
इतनी बिजलियाँ चमकती, अह,
हो गया चकित जो अम्बर था !

उस ओर रक्त की लाली जब
रण मख में उषा सी फैली,
इस ओर मंच पर चली हुलस
ज्वाला की नवल महा शैली :

चढ़ चली चिता सोपान सुभग
पद्मिनी सोलहो सज्जा में !
सब क्षत्राणियाँ चलीं पीछे
अग्रजा प्रदीप्त मुखाभा में।

पद्मिनी मध्य में और सभी
हो गयीं चतुर्दिक आलोकित !
लग गयी चिता में आग, लगी
होने द्रुत लपटें आरोहित।

देखा लोहित रण प्रांगण को,
उड़ते केसरिया को देखा।
अन्तिम अभिनन्दन ध्वज को कर,
चित्तौड़ दुर्ग गौरव देखा।

बोली—"हे प्राण-ध्वजे अनुपम !
स्वातन्त्र्य, न्याय की फहरों में
निज आन अनोखी लिये रहो
फहरती विजय की फहरों में।

"सर्वस्व हमारा हम सदैव
है निरा तुम्हारे लिए अभय।
हम स्वाहा हो हो फहरों को
देते जाएंगे गंध मलय।

"निज निरुपम नव निर्वाण वलय
यह अपनी केसरिया बेला
ले फरफर फहरों केसर में
रंग दो जग जीवन का मेला !!"

जय एकलिंग कह वीरों ने
जब दुर्ग द्वार सहसा खोला,
तड़फड़ा तभी मारुत ने सब
झंझानिल पंखों को खोला !!

वह शोणित रण बेला अनूप !!
वह पावक मख बेला अनूप !!
फर फर केसरिया फहर रहा
उनचास पवन गरिमा स्वरूप !!

अब देखो झंझा लपटों में
कितनी सुषमा, कितने सुख से
है क्षत्राणियाँ खड़ी अविचल
कितने मुकुलित उज्वल मुख से !!

यह अखिल अमल सुषमा जलती,
शृंगार समग्र, सुरभि जलती !!
कोमलता प्रेम प्रणय पावन,
शुभ आशा, अभिलाषा जलती !!

जब तक प्राणों में साँस रही
तब तक अधरों पर हास रहा !
तन जलने पर भी उस स्मित का
रेखा-अंकित आभास रहा।

वे काली रेशम का अलकें,
वे कोमल गोरे गात तरुण,
वे श्वेत-श्याम-रतनार नयन;
वे सुस्मित अधर कपोल अरुण

हो गये खाक जलकर जीभर !
जल गया आह ऐसा बसंत !!
जो अभी दृगों के सम्मुख था
वह विश्व मनोरम, वह बसंत !!

नक्षत्र, वज्र, उल्का अनेक
टूटे होंगे, पर धरती पर
आ सके न, ऊपर ही ऊपर
रह गए लहकती लपटों पर।

गूँजा नभ में जयकार: "आज
नारी समाज के गौरव की
गरिमा उन्नत है वहाँ जहाँ
कोई भी विभा नहीं चमकी !!

"हे राजस्थान अमर जय-जय !!
हे क्षत्राणियाँ अमर जय जय !!
बलिहारी है उत्सर्ग सभी—
पद्मिनी तुम्हारी" जय जय जय।।

आश्चर्य भरी लपटें, तेरी
ज्वाला में कैसा मलय जगा:
इन ललनाओं के तन-मन में
मानों चन्दन का लेप लगा ?

केसरिया तेरी महिमा को
मानव की वाणी क्या गाए:
निज अस्त्र भयावह काल-बज्र,
अरि अस्त्र फूल जो कर जाये;

जो पर्व हुताशन का अपूर्व
ऐसा रण-ताण्डव रच जाये !
केसरिया बेला यह तेरी,
कैसे शब्दों में सज जाये !

मारुत उनचास बहा झंझा,
फर-फर फहराती विजय ध्वजा !!
देखो केसर मय धरा-गगन,
केसर में सारा साज सजा !!

पावक ज्वाला रण-प्रांगण में
चमकी रण का अवसान हुआ।
हमने भी अपना कृत्य किया,
उत्सर्ग ज्योति का गान हुआ।

उस महाध्वंस के तम-तल में
जो दबी पद्मिनी की आशा
सुलतान ऊधम की अभिशापित
उसने ली पुनः नयी साँसा।

अपने सरदारों को लेकर
चितौड़ किले में वह आया।
देखा न वहाँ कोई पुतला,
हो गया चकित, भ्रम सा छाया।

बस सर्पो के फूत्कार सदृश
रव बहुत-भयावह होता था !
वह वैभव कहाँ गया अविकल,
किस प्रलय वलय में सोता था !

दुर्दम्य दुराशा की दुर्मद
आँखों ने देखा ध्वंस सभयः
कुछ राख जली, कुछ जलती ही !
आयी कराहः यह व्यर्थ प्रलय !

इस भस्म राशि से अह, कितनी,
कैसी साँसें निःसृत हुलसितः
यह पुष्प युगों के क्रम अनन्त
करता ही जायेगा सुरभित !!

पद्मिनी, पद्मिनी कह उसने
कुछ भस्म उठाना ही चाहा,
ज्वाला में तड़ित-तड़प होकर
चमकी चपला सी, रव हा हाः

"रे नीच अपावन हाथों से
यह पूत भस्म छूने आया!"
फूत्कारों ने भी साथ साथ
फुत्कार घृणा का दुहराया ।।

आँखें उसकी चौंधिया गयीं,
श्रुति युगल रहे बहरे होकर !
बेहोश हुआ प्रक्षिप्त सहश
गिर पड़ा धम्म सा धरती पर !

आर्यों की पावन संस्कृति ने,
भव की गाथा ने कभी कहीं
महिला-समाज से निश्चय ही
पाया ऐसा व्रत-दान नहीं !

नारी समाज का सर्वश्रेष्ठ
गौरव है यह जौहर अद्भुत !
उत्सर्ग कहीं इसके समान
देखा न गया, न हुआ विश्रुत !

सारी बेला जग जीवन की
हो जाती केसरिया बेला !!
सुषमा की खरी कसौटी सब
हो जाती जौहर का मेला !!

: ७ :

एक बस्ती

"इस सूने अंचल में कैसी
निराकार सी यह बस्ती ?
हृदय ज्योति से भर देती है
मौन मौन किसकी हस्ती ?

"बादल विना घहरती बिजली,
चले बिना आंधी चलती !!
कल्लोलिनी नहीं कोई पर
लहरें है हर हर करतीं !!

"गाता, रोता यहाँ न कोई,
पर दोनों ही सुन पड़ता !!
एक बार दिल गा उठता है,
एक बार दिल रो उठता !!"

"मधुर मधुर सी दिखती बेहद
खरी कसौटी पर चढ़ता
कौन हृदय यह हृदय थामकर
व्रजों का स्वागत करता ?"

"विजली, सूरज, आग न चन्दा,
कौन प्रकाश दमक उठता ?
कौन मधुर आशीस बरसता,
आलिगन मानों करता ?

"अरावली के जंगल में इस
पर्वत पर ले अपना प्रण
करता था वनवास प्रवासी
हा सिशोदिया कुलभूषण!

"अरावली के हृदय बसी है
उस बस्ती की याद अमर!!
अरावली के हृदय पड़ी यह
उस हस्ती की छाप अमर!

पर्वत की चट्टानों पर यह
बिजली नहीं घहरती है,
प्रतिरव है यह तो चेतक की
टाप टपाटप पड़ती है॥

गिरि गह्वर में झहर झहर कर
यह तूफान न चलता है
महा काल का जुड़वाँ चेतक
सरपट सिमट दौड़ता है!!

"कल्लोलिनी विचित्र यहाँः यह
हल्दी घाटी का स्वर है—
शत्रुध्वंसिनी रण गंगा की
लहरों का हर हर रव है!!"

"गीत नहीं, प्रतिगीत गा रहाः
इन वृक्षों के ये हैं स्वर
ये बनवासी के शिशुओं को
सुला रहे लोरी गाकर!!

"रुदन नहीं, प्रतिरुदनबिंब रहा,
धैर्य हृदय को त्याग रहाः
भूखे शिशुओं से बिलाव वह
ग्रास छीन कर भाग रहा!!

"राणा का जो लौह हृदय गढ़
तोपें नहीं हिला पायीं,
एटम शक्ति करुण क्रंदन की
उसे ध्वस्त करने आयी !!

"ज्योति-बिम्ब यह दूर तरणि से
भेद काल का दुर्दम तम,
इतिहासों के चिर पन्नों पर
स्मृति के अमर पटल पर जम,

"एक लिंग का सिंहासन यह
केसरिया है चमक रहाः
स्वतंत्रता की दीपशिखा पर
तेज त्याग का दमक रहा।

"बहुत कहूँ क्या यह प्रताप का
है प्रताप नित नित नूतन—
राजस्थानी आन मंच पर
करती जग का अभिनंदन !!!

"हुल । हुलस आलिंगन करने
दोनों हाथ बढ़ा जाती
भावी इसकी अमर आयु पर
अपनी आयु चढ़ा जाती !!

●

: ८ :

ये अलौकिक संघटन क्यों ?

"पथ हुलसता, उमँगता सा
गगन में क्यों जा रहा
क्या हृदय को गुदगुदाता,
गुनगुनाता गा रहा ?

"पवन पागल प्रेम में हो
इस तरह लहरा रहा,
ध्वजा मानों नभ शिखर में
विजय की फहरा रहा !!

"स्वर्ग का संदेश कैसा
लिपट तन में कह रहा !
गंध किस उत्सर्ग की प्रिय,
प्यार कैसा बह रहा ?

"किस सुहागिन के करों की
कलित सज्जा की झलक
भर रही अविकल हृदय में
प्रेम की अद्भुत ललक ?

"ज्योति का आलोक नूतन
क्यों तरंगित हो रहा ?
हृदय स्रोतों का मचल कर
क्यों उमंगित हो रहा ?

"खिली जातीं मुँदी कलियाँ,
झूम उठते वृक्ष क्यों ?
झूम उठते, चूम उठते
विपिन के ये कक्ष क्यों ?

"वतन को आजाद रखने
मस्त हो प्यारे वतन,
इसी पथ से गया कोई
वीर केसरिया पहन !!"

: ६ :

अप्रतिम चेतना

हर तिनका घी घेवर है,
हर तिनका वालूशाही है !!
हर डाल भुलाती झूला है,
हर पत्ती लोरी गाता है !!

हर वृक्ष बाँध तूफान खड़ा,
मस्तों में है झूमा जाता !!
हर फूल लहू पर उगा हुआ
हर जोश जवानी का गाता !!

हर घाटी घोष घहरती है !!
हर नाला नारा गाता है !!
हर लहमें पर संदेश नया
हरदम लहराता आता है !!

हर पर्वत झिर झिर झिरता है:
माँ की आसीस बरसता है;
लालों के समर प्रयाणों का
हर पग पववारा कहता है !!

हर जर्रा हँसते ही हँसते
है गर्म लहू में जज्ब हुआ !!
हर चमन चैन से लहराता
बलिदानों से सरसब्ज हुआ !!

हर ज़र्रा ख़ाक आइना है !!
यह अनल मलय मधु बहता भी !!
यह जौहर जला चिता पर था,
पर अभी चितों पर जलता भी !!

हर सर्ग वीर गाथाओं का
हर सूना खंडहर गाता है !!
हर पल केसरिया की बेला
बनकर दिल पर छा जाता है !!

हर समाधि से सन सन करता
जय एकलिंग का रव आता !!
हर झोंका मारुत का चल-चल
केसरिया झंडा फहराता !!

हर राह झनकती, अम्बर में
बिजली का तेज चला करता !!
हर पत्थर शोला है, हरदम
हर जोशेवतन जला करता !!

हर सुन्दर रंग सुहागों का
दो रंग मिला कर घोला है:
है एक अजब रण की लाली,
दूसरा दहकता शोला है !!

हे मेरे राजस्थान अमर,
हे तीर्थराज अनुराग महज !
मैं प्रेम पुजारी आया था
लेने तेरी पावन पद रज !

पर हुआ स्वयं ही रज-पराग,
जीवन का दाय चुका जाता;
इन मुक्त हवाओं में उड़-उड़,
तेरा अगेय गौरव गाता !!

●

: १० :

मेरो ललक क्या है ?

जीवन का सब मेला मेरा
केसरिया का मेला हो !!
निज प्रयाण की बेला मेरी
केसरिया की बेला हो !!

रण-सज्जा, शृंगार सोलहो
कर केसरिया वेश सजा,
चिता सजायी हो जौहर की,
फहरायी हो विजय ध्वजा !!

वीर और ललनाओं ने तब
पूर्ण किया हो पूत हवन !!
सनक चला हो पागल होकर
अमित गंध कर पान पवन !!

चढ़ा चिता पर सुन्दरियों को,
कर अन्तिम प्रिय आलिंगन,
द्वार दुर्ग का खोल तड़ित सा
कर चण्डी का आवाहन,

निकल पड़े हो तड़प-तड़प कर
वीर गुफा गढ़ से बाहर !!
चलती हो बिजलियाँ घहरने
कह कर एकलिंग हरहर !!

तलवारें हो बढ़ी लहककर,
लपट चिता की चढ़ी गगन !!
वहाँ उड़ा चितौड़ दुर्ग पर
केसरिया उनचास पवन !!!

दो सेनायें डँट आयी हों
अरावली के गह्वर में
दहक रहा हो पत्थर-पत्थर
हल्दी घाटी के घट में !!

वृक्ष-वृक्ष हो लगा झहरने,
गुफा गुफा हो रही गरज !!
अम्बर चकित, दिशायें कम्पित,
लता लता हो रही लरज !!

जय जय राजस्थान अमर जय !!
जय सिसौदिया कुलभूषण !!
जय चेतक की अमर चेताने !!
जय राणा का अविचल प्रण !!

यह प्रताप अतुलित प्रताप का
देख वीरवर चेतक पर,
हो उनचासों पवन उड़ रहा
केसरिया झण्डा फर फर !!!

काट दिया हो निज हाथों से
हाड़ी रानी ने निज सर !!
धन्य धन्य क्षत्राणी के स्वर
गूँज गया हो भू-अम्बर !!

मुण्डमाल वह पहन चला हो
चूड़ावत हर रुद्र समर !!
हो उनचासों पवन उड़ रहा
केसरिया झण्डा फर फर !!

इसी पूत केसरिया में हो
गगन मनोरम धरा-गगन
मेरे प्राण उड़ा दे उड़ उड़
केसरिया उनचास पवन !!!

: ११ :

तीन नियामतें !

"संग्रहालय है भव विभूतियाँ,
राष्ट्रों के अनमोल रतन।
देख देख आश्चर्य यहाँ के
हो जाते हैं चकित नयन।

"अखिल विश्व के अद्भुत अनुपम
नव वैज्ञानिक यंत्र सजे।
नव परमाणु शक्ति के संचय
नव विधान जब तंत्र सजे।

"पुरातत्व, नूतन दोनों का
सग्रह है सम्पन्न सफल।
कौतुक गृह का उद्घाटन हो,
यही कह रहा है प्रतिपल।"

"अभी अजायब घर मुर्दा है,
इसमें प्राण बुलाना है;
मंत्रिप्रवर! अति दूर देश से
पूत नियामत लाना है!

स्वयं राष्ट्र भी पूत बनेगा
जिसका नव दामन छूकर
पाक जनाजा करना मेरा
पास उसे मेरे रखकर!

"अमर विश्व की गाथाओं में
पल पल मिट्टी का कण कण,
नव जीवन ले जाग उठूँगा;
युग होगा जिसका क्षण क्षण।"

"कौन देश है वह अनियारा
और नियामत क्या है वह?
क्या सचमुच कुछ है भी ऐसा,
अभी पवन में जाऊँ बह!

"प्रिय, वह देश धन्य भारत है,
है इतिहास सही साखी:
पूत नियामत है केसरिया,
नर की राख और राखी!!

●

: १२ :

कौन हो तुम!

कितनी सदियाँ, कितने शासन
काल-गाल में चले गये।
जग जीवन के रंगमंच से
युग भी कितने फिसल गये।

बहुत बहुत उत्थान पतन में
बहुत व्यतिक्रम देख चुका।
रुके प्रवाह बहुत पर मेरा
सहज प्रवाह न कभी रुका!

बलिहारी इस भूतल की; मैं
बिलय कभी होता अब ताक।
हुलस हुलस कर प्राण पिया है
जीवन-अमृत बहुत छक-छक—

वह रस जिसको नहीं मौत के
सर्द हाथ भी जमा सके!
हिला न सके आँधियों से भी,
नहीं आग से जला सके!

पार किया अपनी सेना को,
सदा शत्रुदल डुबो दिया !
प्यार, प्रलय-वातूल कहाँ से
किसने मुझमें बसा दिया ?

गाड़ रसातल में दो चाहे,
कहीं उड़ा दो अम्बर में,
केसरिया के नारे पल भर
नहीं टूट सकते स्वर में।

सारा जौहर, सारी राखो,
सारी केसरिया बेला
समेट कर बहता रहता मैं
एक स्वर्णयुग का मेला !

वीर भूमि के प्याले में मैं
केसरिया की हाला हूँ,
यों ही बहता जाऊंगा मैं
राजस्थानी नाला हूँ।

शिथिल तुम्हारे जीवन-स्पन्दन
लो यह हालायुग वाला !
नव यौवन रग रग में मचले;
अमर हमारी मधुशाला !

●

: १३ :

तीर्थराज

तीर्थों में जीवन बीता, क्या
तीर्थराज को पहचाना ?
सुना न कानों से भी अपने
राजस्थान, अमर राना ?

चलो वहाँ उस पावन भू पर
जहाँ पुरुष महिलाओं ने
महायज्ञ कर सोने बरसे
धरती के कोने-कोने !

बार बार निज शीश चढ़ाकर
एक एक कण पूत किया !
बच्चे बच्चे को माया का
फंद काट अवधूत किया !

नर मख रच रच एकलिंग की,
मातृभूमि की पूजा की !
कर नर हवन, सती व्रत पावन
प्रिय संस्कृति की पूजा की !

जहाँ आन की काशी करवट,
हँस कर शीश चढ़ा देते—
खुली हथेली पर नर-नारी
रख कर प्राण बढ़ा देते !

राणी, जौहर, केसरिया मिल
जहाँ त्रिवेणी लहराते,
चंदन चूरों से भस्मों के
कण तन मन में लिपटाते !

रोम रोम पुलकित होना है,
बंधन सारे खुलजाते !
हर हर स्वर निर्मल लहरों में
कलमष सारे धुल जाते।

बल चल परिमल पवन पुलकते
शुभ संदेश सुना जाते,
जड़-चेतन सब जहाँ उमँग कर
अजर अमर गाने गाते !

विजय स्तम्भों, समाधियों के
पंडे जहाँ न कुछ लेते,
पुजारियों की झोली कसकर
सब रत्नों से भर देते।

जहाँ न बालू, चंदन-परिमल
ज्वाला - शीतल उड़ते हैं।
बंद न होते विकल धूल से
लोचन शतदल खुलते हैं!

प्रेम प्रफुल्लित उत्सर्गों के
लगे संगमरमर धवलित!
घाट सुकीर्ति सुरभि से सुरभित
सुर सामन्तों से रक्षित!

चरणोदक ले करो पुजारी,
उसका दरस, परस, मज्जन।
जीवन की अनुपम छवि देखो,
केसर का आँजो अञ्जन!

●

: १४ :

मुझे बता दो....

"मुझे बता दो सुमन सलोने,
मिली तुम्हें किसकी लाली?
किससे सीखा, खिलना, झड़ना,
हंस हंस कर डाली डाली?

"इतने सुन्दर कैसे हो तुम,
जाना कैसे मन हरना?
सुभग तुम्हारा खिलना, झड़ना,
या झड़ना ही है खिलना?"

मैं क्या जानूँ सुन्दर हूँ मैं,
सुन्दरता क्या कहलाती।
हाँ, मेरे जीवन की प्रियतम
कही कहानी यों जाती :

"बलिदानों की अमर भूमि पर
मुझे लगाया माली ने।
स्वप्न लोक से आकर जीवन
ज्वाल पराग लगा पीने।

"जहाँ सजाती केसरिया सज
माँ बेटों को हिय हुलसित,
बहनें, भ्राताओं, पतियों को
प्रेम सुहागिनियाँ ललकित !!

"काट हाथ निज शीश युवतियाँ
जहाँ किया करतीं अर्पण
जिसे पहन प्रण वीर केसरी
करते थे अरिदल मर्दन !

"जहाँ मातृ-पय कीं प्रिय लज्जा,
शुचि सिन्दूरों की लाली,
मातृभूमि के हित रजपूती
आनों पर जाती पाली !

"जहाँ समर में जूझ गए रण-
वीरों का स्वागत जीभर
करती थीं युवतियाँ आरती
सजा, सोलहों विग्रह कर !

"जहाँ पुरुष, स्त्री, बच्चे, बूढ़े
जीते मर कर आनों पर,
बार बार कण कण धरती का
किया लहू से अपने तर !!

"जहाँ ज्वाल में कूद युवतियाँ
जीभर डूब नहाया था,
चन्दन के शीतल लेपों सा
लपटों को लिपटाया था !!—

"उसी रक्त की, सिन्दूरों की,
केसरिया की है लाली !!
उन्हीं हुलासों के पराग की
है मेरी मधु की प्याली !!

"वही गींत मैं राजस्थानी
गाता हूँ, या मनहरता ?
मैं हूँ केवल लास भरा, क्या
जानूँ खिलना या झड़ना !!

"जीभर भर उल्लास लास सब
ले लो प्रिय उर की झोरी !
सच कहते हैं देने ही को
फूले हम गोरा - गोरी !!"

●

: १५ :

मंत्रमुग्ध मैं

कर दिया जादू किसी ने
अजब मेरी चाह पर :
मैं चला जाता मचलता
किसी सूनी राह पर !

कदम उठते कहीं मेरे,
चला जाता है वहीं !
कलम लिखती कहीं भीं कुछ,
लिखा जाता है वही !

और कुछ करता रवाँ पर
रवाँ हो जाता वहीं।
साँस लेता और कुछ पर
साँस बन जाता वही।

जंगलों के महल सूने,
इनकलाबी बोलियाँ—
गहन बन में कहाँ जातीं
सात सौ वे डोलियाँ?

कौन लपटों की निसेनी
स्वर्ग को भी पार कर;
धरातल पर खड़ी हँसती,
मौत रोती हार कर?

कौन सूनापन झनकता,
मौन क्या झंझा बहा?
नील घोड़े पर थका सा
कौन जाता है वहाँ?

शौर्य का आलोक अनुपम,
भीष्म व्रत महिमा महा,
समर सुरसरि का भगीरथ—
कौन जाता है वहाँ?

शुष्क अधरों के दलों पर
फूल क्या अब भी खिला:
खिज़ाँ से ऐसी बहारें
कौन जाता है पिला?

मुण्ड की माला पहन वह
कौन करता गर्जना?
एक क्षण कितने युगों की
कर रहा है सर्जना?

कौन केसर की फसल ये
घाटियाँ लहरा रहीं ?
कौन बेला सिर उठाकर
चोटियाँ बतला रहीं ?

हो रहा है प्रेम - पागल
कौन बेला ले गगन ?
है जुदाई की घड़ी यह
कौन मेला ले मगन ?

कौन मेला देखता मैं
नित्य सोते - जागते ?
कौन बेला आँकता मैं
पल मुझे जब भागते ?

तुम्हीं राजस्थान कह दो :
मैं हुलसता हूँ कहाँ ?
जानते हो है तुम्हारा
एक टुकड़ा दिल कहाँ ?

●

: १६ :

तुम्हें कैसे आँकूँ ?

एक युग हो दूर तुमको
देखता हूँ प्राणधन ?
एक पल से भी निकट पर
जगमगाते तमहरण !

प्रेम के आँसू नयन जो
हंस रहे वे हंस रहे !!
फूल होठों के हुलस जो
खिल रहे वे खिल रहे !

साज - रण के, चिता के जो
सज रहे वे सज रहे !!
वाद्य मारू मोहते जो
बज रहे वे बज रहे !!

स्वर्ग सुषमा के मचल जो
जल रहे वे जल रहे !!
उष्ण - शीतल भस्म - कण जो
उड़ रहे वे उड़ रहे !!

मातृभू पर नर - हवन जो
हो रहे वे हो रहे !!
मौत के सब हौसले जो
रो रहे वे रो रहे !!

आँधियाँ हर - हर विटप जो
बह रहे वे बह रहे !!
घाटियों में सिंह गर्जन
कर रहे वे कर रहे !!

भूमि कण - कण से लहू जो
बह रहे वे बह रहे !!
अधर वीरों की कथा जो
कह रहे वे कह रहे !!

....

तुम्हें राजस्थान ! कैसे
चित्रपट पर ढाल दूँ ?
सिंधु केसर का उमड़ता,
रंग कैसे डाल दूँ ?

तुल स्वयं जाता तुम्हें मैं
तोलते ही तोलते !
घुल स्वयं जाता तुम्हें मैं
घोलते ही घोलते !

: १७ :

महाराणा प्रताप और अर्वली

"जौहर का प्राचीन दुर्ग भी
छूट गया चित्तौड़ - अमर,
जुट न सके जग की कृति में भी
जिनके से स्वर्णिम अक्षर!

"दुर्ग उदयपुर का भी अब तो
छूट गया धुँधला होकर:
अपनी अमर स्वर्ण गाथा में
जोड़ न सका एक अक्षर।

"अमर अर्वली तब अंचल में
आया मैं निज मान लिये—
एक लिंग के सिंहासन की
अमर आन, अभिमान लिये—

"सहकारी राजाओं ने है
जिसे कुचल डाला जीभर:
निज स्वतंत्रता दे दी केवल
टुकड़ी जूठी रोटी पर!

"मेरा सगा बंधु भी मुझको
छोड़ शत्रु की ओर हुआ।
धन्य - धन्य की घाटी घाटी
धिक! धिक! धिक! धिक! शोर हुआ!

"जननी जन्मभूमि की लाली
एकलिंग की आन लिये
केवल मैं क्या करूं! याद पर
हूँ माँ का पय पान किये।

"कितनी वंश पीढ़ियों ने जिस
इंच इंच भू को फिर फिर
अपने प्राण रक्त से सींचा,
कीर्ति न हो वह क्यों सुस्थिर ?

"बलिदानों की अमर भूमि यह
इसके ज़र्रे - ज़र्रे में !
अमर चेतना गूँज रही है
इसके दर्रे - दर्रे में !!

"हर झरने, हर नाले में, हर
वृक्ष और हर चोटी में,
हर लहमें, हर पथ में जलती
आग वही हर बोटो में !!

"अरावली इसकी रक्षा का
भार तुम्हारे ऊपर है !!
हम सेवा कर मिट जायेंगे,
स्वत्व तुम्हारा अक्षर है !!

"ले जलवायु, अन्न, फूल - फल
पले तुम्हारे ही अंचल !
स्वतंत्र चेतन जगा दिया है
तुमने ही इसमें अविचल !!

"एक पूत बापा रावल का
एकलिंग का दास एक,
जननी की मुख लाली रखने
आया है उच्छ्वास एक !!

"सुख, विलास, शृंगार शपथ है,
पथ है केवल स्वतंत्रता !!
फूलों की सब राह शपथ है,
पथ है केवल कंटकता !!

"जो कुछ दोगे खा लूँगा वह,
जहाँ कहोगे सो लूँगा !
नींद कहाँ अब जीवन में है,
क्षण दो क्षण दृग झप लूँगा !

"रानी को मैं इन लालों के
साथ सौंपता हूँ तुमको।
आन हमें दो, प्राण हुलस लो,
है सौगंध यही तुमको !

"हमें अन्न - जल दो या मत दो,
करते रहो यही गुंजन :
'तुम स्वतंत्र हो स्वतंत्रता ही
है सर्वस्व तुम्हारा धन !'

"नींद स्वल्प आ जाये भी तो
स्वतंत्रता ही के सपने
लहरायें अविकल लाली में
गत बलिदानों की अपने !!

"देश, धर्म, संस्कृति का अपने
अनुयायी चिर अधिवासी
संस्कारों में जिनके उनका
स्वत्व भरा हो अविनाशी—

उनका ही शासन शासन है,
अन्य सभी हैं दु:शासन !
उनकी शान्ति विभूति, विजय है,
गुप्त विकर्षण, संघर्षण !

"हमें प्रेम, बलिदान, त्याग की
देनी वही वसीयत है
शिष्ट विभूति शांति देती जो,
आस्था जिसकी शाश्वत है।

"चाह नहीं निर्वाण, भुक्ति की
जननो की सेवा तजकर!
इस मिट्टी सा पूत न कुछ भो,
और न कुछ जीवन उर्वर!

"सभी लोक हैं सुख विलास के,
सुख जर्जर दुःख से कातर!
देती है बलिदान यही भू;
मर्त्य लोक ही अजर अमर!

"शास्त्रों ने चाहा प्रशान्ति को
बाँधे अपने पन्नों पर;
बाँधा भो पर वह बेचारी
व्यक्ति शान्ति ही थी कातर!

"पुष्ट समष्टि शान्ति तो केवल
शस्त्रों में ही बँध पायी।
राह कठिन मानव के हित तो
यही विरासत है आयी।

"नाम प्रताप रख दिया मेरा,
क्या प्रताप मैं दिखलाऊँ?
अमर इसे तुम सार्थक करना,
मैं क्या तुमको समझाऊँ।

"बापा रावल कुल का गौरव
सभी घाटियाँ गूँज रहीं:
राजस्थानी बलिदानों की
जय, जय, जय, जय, बोल रहीं!!!

"इस प्रताप के नाम उन्हीं में
घाटी एक अमर कर दो!
अपनी अमर स्वर्ण गाथा में
कहीं मुझे भी ध्रुव भर दो!

... ...

"पूज्य पूर्वजों ! धैर्य न तजना,
पूत रक्त की बूँद एक
अड़ी आन पर, केसरिया पर
मिटने आया दास एक !

"अमर ! पूत हाथों से तुमको
पावन श्रद्धाञ्जलि दूँगा !
सूरज - चाँद कहीं छिप जायें,
मैं न विमुख माँ से हूँगा !

"उधर विपुल बल, सैन्य सम्पदा,
तोप - तुमुक प्रस्तुत हैं।
इधर एक मैं, सगा बंधु बस
एक वीर चेतक है !

"अतुल अलौकिक कीर्ति अर्वली,
तुंग पादपों, शृंग अचल,
जय जय बोलो एक लिंग की
भव मंगल, भवभूति अटल !!!"

झूम उठे तरु, तुंग शृंग तन
उठे झहर झर झर निर्झर !!!
फहर उठा केसरिया झण्डा
तुमुल पवन में उड़ फर फर !!!

गूँज उठा रव पात पात में :
"धन्य धन्य तुम हो प्रताप !!
युग युग गायेगा, गायेगा
अमर महाराणा प्रताप !!!"

: १८ :

स्वर्ग मेवाड़ है !!

कुछ कह न रहीं, कुछ गा न रहीं,
ये कैसी पर्वत मालायें ?
फूला न हृदय, लोरी न जगी,
ये तरु, ये कैसी शाखाएँ ?

वनवासी - प्राणों हित इनमें
पिस जाने का उल्लास नहीं,
कैसी हरियाली घासों की ?—
इनमें कुछ है मधुमास नहीं ?

ये झरने तो मैं देख रहा;
कुछ आँसू अपने झरते हैं;
पर उमँग उमँग रस केसर के,
पववारे कहाँ बरसते हैं ?

मर मर कर इतनी राह चला,
मंज़िल की लगी न थाह कहीं
पग - पग के नीचे बिछी जहाँ
मंज़िल, वह आयी राह नहीं !

शिशु सा न मृत्यु को ले उर में
खेला, तो क्या जीवन - मेला ?
साकी उतार लो अंबर से,
हंसती केसरिया की बेला !!

... ...

खूब गुलजार सूनी अजब राह है,
चलो देखो न देखा जिसे आँख से।
एक दुनिया अजब सांस लेती यहाँ;
राज़ क्या क्या दमकता न है राख से ?

बैठे ज़र्रे ज़र्रे अमर प्राण हैं !!
गति ज़र्रे ज़र्रे अमर प्राण हैं !!
क्या जाने कि कितने ये अरमान हैं,
हंसते हंसते तमन्ने वलिदान हैं !!!

कविता ज़र्रे ज़र्रे उमड़ कह रही :
स्वर्ग मेवाड़ है !! स्वर्ग मेवाड़' है !!!
उड़ रहा है निशाँ : हो रहे गान हैं :
स्वर्ग मेवाड़ है !! स्वर्ग मेवाड़ है !!!

: १९ :

प्रति कण में, प्रति कण से

इसकी अर्पित मालाओं में
छिप जाते हीरों के हार !
पूत आरती में ऊषा का
मंद रश्मियों का शृंगार !

ओज - तेज, गति में छिप जाता
बिजली की भी आभा, वेग।
चुके हुए कितने प्राणों के
नग से जन्मभूमि के नेग !!

इसकी जाज्वल शीतलता में
खो जाता है मलयज स्पर्श !
कितने हैं उत्कर्ष उमड़ते
जीवन के अन्तिम निष्कर्ष !

भरा हुआ है माँ - बहनों का
आशीसोंमय कितना प्यार !
किस हुलास से क्रीड़ा करते
प्रिय - प्रेयसि के प्रणयोद्गार !

कहाँ बनो ऐसी समाधियाँ,
कण कण में ये पूत मजार?
वजे कहाँ हैं टूट - फूट कर
जीवन बोणा के सब तार?

जानें कितनी वंश - पीढ़ियाँ
एक एक कण में कुर्बान !!
एक एक कण में मुखरित है
एक जाति का गौरव - गान !!

एक एक कण से बहता है
उत्सर्गों का मलय मरंद !!
रील सदृश निकले आते हैं
स्वर्ण - वर्ण सर्गों के छंद !!

... ...

यह है राजस्थान भूमि की
मिट्टी जीवन पुष्प - पराग !!
वरदायिनी यही है, इससे,
विश्व वांछे ! वर तू माँग।

कव क्या ऐसा स्पर्श कर सका
अखिल विश्व का भो इतिहास?
पाया कहाँ निखिल रस - संकुल
कविता ने ऐसा उच्छ्वास?

कभी - कभी अनुरक्त कल्पना
पा जाती है कण एकाध।
इसे जला ले उर में, जग के
पथ पर तू जीवन की साध!

: २० :

सोयी सज धज !

मैं ज्योति, जागरण का मीटर,
चिर चेतन हूँ।

घूम - घूम अग - जग में देखा
युग - युग का लेखा कितना :
कितना कौन जगा है कैसे,
और जला कैसे, कितना।

सबको माप सही लेखा लिख
आया एक जगह अचरज !
कैसे कहूँ, मूक होता स्वर,
वह अद्‌भुत सोयी सज - धज !

सदियों के सुदीर्घ जीवन में
झपकी ही तो थी आयी।
लेकिन जागरूकता से कब
खाली हो वह भी आयी ?

इतनी सदियाँ प्राणों की वह
ज्योति गली तूफानों में,
कहाँ झिलमिलाहट आ पायी
पल भर को भी पलकों में ?

हिली साधना की समाधि भा,
शुद्ध सिद्धियों का आसान !!
स्वय जागरण ज्योति विकल हो
बैठ गयी दृढ़ कमलासन !

जागरूक को लिये दृगों में
पलकें अपनी ही ढक लीं
कहाँ वहाँ तम जा सकता था,
नींद ज्योति ने ही भर ली !!

यह है राजस्थान ज्योति में
सोता जग का अभिनंदन !!
इस सौरभ कण से भरता मैं
नव कलियों का उन्मन मन !

मैं अमर कला का प्रेम - विकल
अविकल मन हूँ—
मैं ज्योति जागरण का मीटर
चिर चेतन हूँ।

●

: २१ :

दासता का शृंगार

दासते ! आओ तुम्हारा
मैं करूँ शृंगार नूतन :
पूत राजस्थान में मैं
तुम्हें दे दूँ नवल जीवन !

नहा लो, नाला मचलता,
स्वल्प जल पीलो पुलक भर।
नव दृगों से देख लो ये
दुर्ग, वन, गिरि-शिखर, निर्भर।

इसी मिट्टी से तुम्हारी
माँग भर कर तिलक करदूँ।
गार दूँ हर अजो तर है,
रक्त से जावक विरच दूँ।

राख जौहर की पड़ी है,
लेप चंदन का लगा दूँ।
गूँजते नारे सुना दूँ,
मृतक भावों को जगा दूँ।

घास की रोटी अलभ जग,
बाँध दूँ उपहार अंचल,
छिनी जो युवराज शिशु से;
दूँ रुदन का गान मंगल।

वेश केसरिया सजा दूँ,
बता दूँ इसका सजाना।
वह अमर बेला बता दूँ,
बता दूँ उसका बनाना।

आइना कण-कण यहाँ है,
देख लो निज रूप रानी!
सजी छबि यह छीजती कब?
अमर है इसकी जवानी!!

●

: २२ :

राजस्थान न होता तो

चितौड़दुर्ग, हल्दीघाटी,
जावर माला, अर्वली अमर,
घासों की ललकित हरियाली
बनवासी प्राणों से उर्बर,

जननी अंचल के प्यार भरे,
उद्गार भरे, तूफान भरे,
गह्वर की घनी बनाली के
वृक्षों के पर्वत हरे-भरे,

रूपहले सुभर निर्भर, नाले
उत्सर्गों के मधुपान लिये—
यह राजस्थान न होता जो
जगता केसरिया गान लिये

अब तक न लहू के फौवारे
हंस हंस इससे होते बहते,
दुनिया की आनोबान कहो
तुम नाजेजहां कहां रहते ?

●

: २३ :

मेरे पास तो आओ !

सुषमा के बेसुध परिरंभण,
ऐश्वर्यों की चहल पहल-
किया रसास्वादन जी भर भर,
मचला ले सारी हलचल।

स्नान किया तीर्थों पर जाकर
पावन पर्वों की वेला।
सुन्दर से सुन्दर प्रदर्शिनी,
देख लिया सारा मेला।

शिमलों की बहार ले आया,
दृश्य मनोरम देख चुका,
पर जीवन का तापमान–क्रम
क्षण भर को भी नहो रुका।

कायाकल्प कुटीर धन्य यह
धन्य धन्य मेवाड़ धरा !!
जाने कितना ओज तेजमय
जीवन का चिर स्वत्व भरा !!

आते ही हे अमर अर्वली !
तेरे निर्झर के तट पर,
तापमान की बात कहूँ क्या,
हुआ स्वयं मैं ही निर्झर।

पास चला आये मेरी ही
ज्वर–जर्जर जग का जीवन,
दौड़ जाय नव–रक्त रगों में
उमड़ पड़े नूतन यौवन !

●

: २४ :

जय ! जय !! जय !!!

जय एकलिंग शंकर, हरहर !!
जावरमाला–अर्वली–शिखर !!
जय अविरल निर्झर जटाजाल !!
जय जौहर लोचन मध्यभाल !!

विद्युत प्रवेग वह शौर्य धार
कण-कण प्लावित करती अपार !!
द्रुत विद्युद्युत नाले अराल
ग्रीवा मण्डित मणि व्याल माल !!

उन्नत केसरिया ध्वजा साजी
मार्तण्ड पुंज ज्योतित त्रिशूल !!
सर्वाङ्ग विभूषित क्षार-भार,
तुम सृष्टि प्रलय के शक्ति मूल !!

चितौड़ दुर्ग, हल्दीघाटी
डमरू डिम-डिम युग कर घोषित !!
रव रव में वीरों का ताण्डव !!
है ताल ताल दानव कम्पित !!

हे महारुद्र ! हे महाकाल !
फिर एक बार ताण्डव नर्तन
कर दो तड़ तड़ तड़ तड़ित ताल,
दानव ध्वंसक संगर गर्जन !!

खोलो तृतीय लोचन विशाल
जय महाकाल !! जय महाकाल !!

●

: २५ :

राजस्थान !

"क्षण भर रुको, देख लूँ अन्तिम
बार, पवन ! घर मैं अपना।
जाना कब था हो जाएगा
जीवन यह यों ही सपना।"

पीले पीले पात वृत्त से
गिरकर वृत्त निहार रहे।
सर्द सर्द आहें भर अपना
स्वर्ण अतीत पुकार रहे

"हाय किसलयो भोले बचपन ....
हरे भरे उन्मद यौवन !
जाना होता रहसित तुममें
यह पीलापन भी उन्मन,

"आभा कुछ और ही दमकती
जीवन यह होता न कभी,
इस क्षण के निरीह कम्पन में
होता कुछ ध्रुव स्तम्भन भी।"

"मचल पवन ने कहा "विधुर हे !
रहीं न रुकने की बेला।"
"तो ले चलो जहाँ मरना भी
हो नव जीवन का मेला !

"पूत वहीं का मरिमल तेरी
साँसों सेभी निकल रहा !
उन्हीं अमर प्राणों का स्पन्दन
तेरे भीतर धड़क रहा !

"कौन फहर तेरे पंखों में
अद्भुत स्फूर्ति जगा जाता ?
कोन रँग तेरी स्मृतियों में
सुरभित स्वर्ण घुला जाता !

"कौन राख लाखों रूहें ले
तेरे तन में दमक रही ?
कौन ध्वस्त सी जयमालायें
प्रेम समर्पण हुलस रही ?

"कौन स्थापना किस असादि की
किन शूरों का है शजरा ?
किस ताण्डव नर्तन का अद्भुत
नशा नहीं अब तक उतरा ?

....

"हमें बता दो यह सब क्या है,
यह कैसी अद्भुत बेला ?
चलो स्वर्ग का स्वर्ग जहाँ यह
लाललाल रहसित रेला !!"

"राजस्थान चलूँ ले तुमको,
अच्छा तो अब हो मुदमन !
तूफानों पर आओ मेरे,
कहो बहूँ उनचास पवन ॥"

●

: २६ :

केसरिया बेला

क्यो रंग सभी आकारों पर
उमँगते हुए आ रहे चढ़े ?
क्यों वेग निर्झरों, नालों के
दूने, तिगुने, चौगुने बढ़े ?

झीलों में उठी अजब हलचल!
वृक्षों के प्रहरी झूम उठे!!
वृंतों में नव नव पुष्प लिये
सब एक एक को चूम उठे!!

उनके बाँधे तूफान खुलेः
बंधन प्रशान्ति के टूट गए!!
पर्वतों और तलहटियों में
नव नव फौव्वारे फूट गये!!

पुलकित पर्वत मालाओं की
चोटियाँ और ऊँची होकर
स्वर्गान सुनाने लगीं हुलस,
सुन रहा चकित हो हो अम्बर!!

सनसना पवन के पंखों में
आने अति अद्‌भुत वेग लगे!!
किस भांति चुकाए जाने को
क्या जानें कितने नेग जगे!!

खुल गये अमर गाथाओं के
पन्ने फड़-फड़ बन पर्वों के!!
केसर के रंग लगे झड़ने
अक्षर केसरिया के झोंके!!

कण-कण, क्षण क्षण मारुत-मोड़े
स्वर्णिम गाथाओं से झंकृत!!
पित्रों की प्रीति अपार बढ़ी!!
अंजलियाँ हुई विपुल पुलकित!!

झनझना उठे हथियार दमक!!
आसीसों की लड़ियां मचली!!
सज्जा के साज हुए हुलसित!!
प्रिय हाथों में आरती चली!!

उठ गयी तरंग महावर में !!
माता के स्तन में दूध भरा !!
बहनों का स्नेह सुभग उमड़ा !!
सिंदूर सुहागों का लहरा !!

यह पूत क्षीर-बेला कैसी ?
यह सुभग-स्नेह बेला कैसी ?
यह जावक बेला है कैसी ?
यह अद्भुत रेला है कैसी ?

केसरिया बेला से निःसृत
सब वेग उसी में हैं मचले !!
केसरिया झण्डे में बैठे
उनचासों पवन प्रचण्ड चले !!

यह प्रांगण राजस्थान अमर,
इसमें रण होने वाला है !!
इसलिए अमर उत्साह जगा :
कण-कण, क्षण-क्षण मतवाला है !!

जग-जग केसरमय यह देखो :
पारिमिता जीवन की गाती !!
आनंद अखिल, अनुराग अखिल
केसरिया बेला लहराती !!

आरती

उड़ा दिया पश्चिम मारुत ने,
बरस चुके थे वे बादल।
स्वच्छ पद्मिनी के दर्पण सा
निखरा नीला नभ निर्मल।

कुछ तारों से नभ, रत्नों से
मुकुर मनोहर लगता है।
आज हृदय अपनी सुषमा की
मुदित आरती करता है।

हुलस उठा जब पावन दर्पण
झलक पद्मिनी की पाकर,
हुलस उठा नभ सुरभित झाँकी
नव वसंत ऋतु की पाकर।

हुलस उठा मन नव-नव झाँकी
नव नव भावों की पाकर!
चिंता-बिखरे निखरे मन में
गूँज उठी कविता आकर।

: २८ :

हुलास

हुलसता सावन सुहावन
ले चपल हरियालियां !
हुलसता मधुमास मंजुल
ले नवल वधु प्यालियाँ !

हुलसता है प्रात नूतन
जागरण - उल्लास ले !
हुलसता है गगन — सागर
शरत्पूनों हास ले !

हुलसता है काल अविचल
युगों का वनवास ले !
हुलसता इतिहास जग का
अमरता की सांस ले !

हुलसता है हृदय कवि का
गगन-भू का गान ले !
हुलसता है मर्त्य भूतल
अमर राजस्थान ले !

: २६ :

जीवन-पथ

जिन पूत पथों से वीरों की
डोलियाँ सात सौ गुजरी थीं,
गोरा - बादल की तलवारें
बिजली अरिदल पर घहरी थी,

टोलियाँ वीर बालाओं की
पद्मिनी साथ सज निकली थीं-
सज्जाकर अकथ हुलास भरे
जौहर होने को मचली थीं;

जिस पर वनवासी राणा के
पदचिह्न अनन्त हुए अंकित,
हल्दीघाटी की रण - गंगा
हर हर कर अमर हुई झंकृत,

जिस पथ से पहने मुण्डमाल
हर हर चूड़ावत रुद्र चला;
हर - हर बोला बच्चा बच्चा
केसरिया बेला में मचला-

\+ + × +

वे अमर पूत पथ बन न सका
तो जीवन तू क्या जीता था
तुममें था कोई गान नहीं,
सचमुच जीवन से रीता था!

हे जीवन अब वे पथ बन कर
बिछ जाओ उनके चरणों तर
जो पथिक पूत होने जावे
उस पूत भूमि के दर्शन कर!

: ३० :

पन्ना

कहाँ की तलवार लेकर
तुम चले वनवीर हो?
रक्त में इसको डुबाया
अभी, प्यासी है अहो!

उदय सिंह अबोध शिशु के
दुर्ग स्थित युवराज को
मार कर राजा बनोगे
ले अमिट अभिशाप को?

अरे पन्ना धाय, खूनी
भेड़िया वनवीर यह
आ गया ले खड्ग शोणित,
क्या करोगी किस तरह?

यह महा त्यागी, तपस्वी
दुर्ग है चित्तौड़ का!!
करोगी तुम कीर्ति-पालन
विश्व के सिरमौर का?

दुर्ग के बाहर छिपाया,
उदय को तुमने कहाँ?
पुत्र इकलौता तुम्हारा
सो रहा बस है यहाँ।

आ गया वनवीर नंगा,
लहू लोहित खड्ग ले!
अरे, इस पापेष्ट यम से
क्या कहोगी निश्चले?

"उदय सोता कहाँ पन्ना ?"
पूछता पापी गरज।
निज सुवन की ओर इंगित
कर दिया तुमने करज !!

नींद में बेखबर सोते
सिहर कोमत लाल को
काट देता महा दानव
स्नेहप्राण मृणाल को !!

पर अचल तुम खड़ी पन्ना !!!
कहाँ आँसू, प्यार है ?
कहाँ करुणा है तुम्हारी
कहाँ पय की धार है ?

अह, हिमालय भी कहाँ है
अडिग सुस्थिर मन किये
ज्यों प्रलय विस्फोट सागर
बिन्दु उर में तुम लिये !!

कटा डाला निज दृगों के
सामने निज लाल को !!
प्यार ऐसा कर रहीं तुम
प्रिय उदय युवराज को !

चन्द्र सा मुख शीश शिशु का
अलग धड़ से है पड़ा !!
रुधिर लथ-पथ भूमि सारी,
धैर्य फिर भी है अड़ा !!

किले से बाहर छिपाए
उदय को किस ठौर पर
जा रहीं करने सुरक्षित,
पुत्र को निज छोड़ कर ?

महकता अग-जग अरे, यह
किस सुरभि का सार है!
आन यह अनुरक्ति कैसी
प्यार का किस प्यार है?

प्यार अक्षर महा शिव का,
मातृभू की आन है!!!
अरे, केसरिया विजय का
अप्रतिम यह गान है!!!

धन्य इस शिशु-मेध के तुम
लाल, पावन सा कला!!
कह रहा दुधमुँहा मुखड़ा
"रो न माँ, मेरी बला!!"

"प्राण मेरे उदय भैया
भूमि की इस आन हैं!!
भूमि यह बलिदान की है,
स्वर्ग, भू का गान है!!"

: ३१ :

कुटिया और राणा प्रताप

पगड़ी उलझी अमर सिंह की
कुटी द्वार से जाते।
उलझाने वाले हिस्से को
खींच दिया झुँझलाते।

देख रहे राणा प्रताप थे
दृश्य कहीं से इसका।
कुटिया पर आये, मन
अति चिंतित था उनका।

अमर सिंह तो चले गये थे,
कुटिया ही थी उन्मन।
जर्जर वह अब ध्वस्त, हिल गये
उसके सारे बंधन।

उसे सँवार, सुधार स्वयं ही,
हाथों से सहलाते,
बोले राणा—"भाव हृदय में
चिंता के घिर जाते!

"माँ कुटिया, तुम सा ही मेरा
मन भी बहुत दुखी है।
अमर सिंह प्रति भविष्य की सब
आस्था अधोमुखी है।

"माँ हो तुम, माँ अंचल सी ही
हमको आश्रय देतीं
तप, तुषार, वर्षा, आंधी सब
अपने ही सह लेतीं।

"तुम त्यागी उज्ज्वल विभूतिमय
निज चित्तौड़ किले की,
एकलिंग की आन लिये सब
भव-सुषमा सृजने की।

"वनवासिनी पूत माँ सीता,
दमयन्ती, गीता हो।
साहस, प्रीति, प्रेरणा देतीं,
विभव कहाँ तुम सा हो!

"नहीं अमरने समझा इतना :
उसकी इस पगड़ी की
रक्षा करता कौन जला कर
यह लौ आजादी की !

"महलों ने जो ज्योति बुझायी
उसे जलाया तुमने !
उसे उजाड़ा झल्लाहट से
ऐसे आज अमरने !!

"लगता वह महलों का प्रेमी,
कुटिया नहीं सुहाती।
व्रत के कंटक कर्कश उसको,
सुख-शय्या ही भाती।

"कौन महाव्रत पालेगा वह
कष्ट न जो सह सकता ?
एकलिंग की आन भला कब
अमर गान कर सकता ?

"हंसता ही बलिदान चाहती,
यह मेवाड़ धरा है।
अमर सिंह यह अमर सिंह कब
सचमुच हो सकता है ?

....

"तुम्हें यही गहरी चिंता माँ,
यही मुझे भी मंथन।
लेकिन मेरी अटल प्रतिज्ञा;
माँ, मत हो तुम उन्मन।

"अमर सिंह इस सिंहासन पर
तब तक ही रह सकता
एकलिंग का अविचल व्रत वह
जब तक पालन करता।

"मिथ्या कभी न कह सकता है
यह प्रताप माँ, तुमसे।
सुनते हैं, पूर्वज, इसने की
यही प्रतिज्ञा उनसे।

यही वीरव्रत मातृभूमि का
जीवन पूत अनश्वर।
अगणित बलिदानों से कण-कण
सींचा गया हुलस कर।

"वेही कण हैं इस प्रताप के
तन मन, शाश्वत चेतन।
नहीं प्रताप कुपूत बनेगा,
हो कुछ भी परिवर्तन !!"

.... —...

नव जीवन, नव ज्योति, प्रस्फुरण
दौड़ गया कुटिया में :
धन्य धन्य बेटा प्रताप तुम !!
चुँवन जगा विभा में !

: ३२ :

अमर-मधुशाला

वसुंधरा के उर में जैसे
जगती का जीवन उर्वर:
हरियाली नित फूट निकलती
रत्नों की लड़ियाँ सुन्दर;

रवि से ज्योति, मेघ से मृदु जल
तरुओं से ज्यों विविध सुमन;
बीजों से तरुओं के अंकुर,
फूलों से परिमल छन-छन
राणा, राजस्थान पदों से
गरिमा त्योंहीं बहती है–
शौर्य, आन, बलिदान, अमरता
अविरत फूट निकलती है !!
ये प्रकाश के तारे इनको
नयनों के नग में रख लो।
जीवन ! ये जीवन के जीवन
प्राणों में इनको भर लो !
सिंधु न इन्हें डुबा सकता है,
गगन न कभी छिपा सकता।
ले विस्मृति-मादक न काल भी
इन्हें कलेवा कर सकता।
यही स्वर्ग की मधुशाला है,
साकी केसरिया बाला।
दुनिया वालों ! पीलो इसके
हाथों जीवन का प्याला !

●

: ३३ :

अमर समर भूमि में

ध्वस्त शाही शिविर हैं सब
मोद में जो थे पगे !
सनी आशाएं रुधिर में,
है प्रलय के क्षण जगे !

यह अलाउद्दीन, उसका
अब नहीं सुल्तान है!
यह महान् श्मशान कण-कण
अमर राजस्थान है!!!

डोलियों के सिंह अपनी
डोलियों से कूदकर,
युद्ध का जौहर दिखाकर
जा चुके हैं कूच कर!

सो गये ये वीर शय्या
शत्रु लासों की बना!
किसी भावी युद्ध की पर
यह निरी प्रस्तावना।

जा रहीं मार्तण्ड—किरणें
आज की कर बन्दना।
अमर हे वीरों! तुम्हारी
नित्य होगी अर्चना!!

आ रही है ढूँढ़ती सी
धरा की यह नव किरण,
वीर गोरा की सुहागिन
लिये हँसते अश्रुकण।

लिपट गोरा के मृतक से
जो दमकता सा पड़ा,
कहा—"स्वामी का कहो रण,"
पास ही बादल खड़ा!!

इसी रण में हुआ आहत,
साथ गोरा के लड़ा
वीर बारह वर्ष का ही,
हो गया तन कर खड़ा।

कहा, "चाची मैं कहूँ जो
युद्ध चाचा ने किया,
शत्रुओं का मान—मर्दन
उन्होंने जैसे किया !!

"सुभट उनके सामने आ
दबक जाते स्यार से।
भरे थे जाने न कैसे
वे वतन के प्यार से।

"ये बिछे उनके गलीचे,
समर उनका आँक लो,
पूछलो, ये हैं हवाएँ,
इस गगन को झाँक लो।"

"कह रहे बेटा, सही तुम
वही मैं भी आँकती !
हाथ की उनके बिजुलियाँ
अभी नभ में झाँकतीं !

"फाड़ती उनकी दहाड़ें
अभी अंबर का हृदय !!
गूँजता जयकार अबतक
वायु का पागल हृदय !!

"रूप चिर कर्त्तव्य का वे
रूप पर मेरे कहीं
भूल जायें, हृदय में थी
स्वल्प सी शंका यही !

"पर सुना केवल वही है
जिसे सुनना चाहती !
राह निष्कंटक हुई अब
मुझे पलकें मारती।

"इन्हीं हाथों ने किया था
तिलक यह सिन्दूर का।
कहेगा सौभाग्य मेरा
कौन इस सिन्दूर का?

"सजा कर निज वेश स्वामी,
तुम्हें सज्जित था किया!
नाथ! अमर सुहाग असि की
धार पर अर्पण किया!

"हँस रहा सिन्दूर मेरा
दृग—रुदन से क्या हुआ?
हँस रहा इतिहास मेरा,
इस सिहर से क्या हुआ?

"प्रिय अनेकों जन्म के भी
सुख, सुहाग चढ़ा तुम्हें
रहूँगी देती न कुछ भी
अमर अनुरागी! तुम्हें!

"इन व्रणों पर प्राण-बेला,
प्रेम मेला स्वल्प सब!
सत्य तुम हो, मैं उसी से;
कथा मेरी गल्प सब!

"महल में होकर मुदित मैं
आरती तब साजती,
अब चिता-ज्वाला करेगी
हम युगल की आरती!

कुंज में लेकर तुम्हें तब
प्रेम से मैं कूकती,
पर चिता पर अब तुम्हें ले
बनूंगी भव — भारती!

"कर चुके तुम पूर्ण अपना
कृत्य मेरा शेष है!
शीघ्र ही बादल, तुम्हें अब
वह सजाना वेश है!

"बाँधकर पट्टी तुम्हारे
वर्णों में मैं धन्य हूँ!!
चूम कर तुमको मचलते
इन क्षणों में धन्य हूँ!!

"कहो चाचा से हुलस कर
तुम्हें जो संदेश हो।
बाट मेरी देखते वे
अब चिता का वेश हो"।

"साथ चाचा के रहा मैं
नित्य सब कुछ सीखता
आज तो उनके बिना सब
तिमिर सा ही दीखता।

"यही कहना देवि! उनसेः
'भूलना मत स्वर्ग में
सिर हथेली पर लिये नित
चाहती जननी हमें।"

'लौट कर आना शुभे! तुम
शीघ्र चाचा को लिये।
तुम सजाओ जो न हमको
हो समर किसके किये?

"देवगण अपने न देंगे,
पर बड़ी मजबूरियाँ!!
ले बहुत ही मर्म बैठी
शर्म में ये धूलियाँ!!"

... ...

सज गयी चन्दन चिता अब
एक दम्पति को लिये।
बढ़ी लपटें मातृ भू के
प्रेम की आहुति पिये !!

लिख रही भावी कहीं से
हाथ पर माथा टिका,
एक अद्भुत वाङ्मय की
यह सुसज्जित भूमिका !!

●

३४

अजब लाली

मैंने एक अजब हरियाली
देखी एक अजब लाली !

तरल स्वर्ण की केसर द्युति ले
जीवन की सारी बेला
लाल लाल रचती रहती है
जीवन का सारा मेला !!

तरल स्वर्ण की केसर द्युति ले
लाल लाल प्रसरित अंबर !!
लाल लाल मंडलित क्षितिज है !!
लाल लाल भूधर तरुवर !!

लाल लाल नाले, झंझा, घन !!
लाल लाल निर्झर झिरता !!
लाल लाल तम गुमसुम रहता !!
लाल लाल चन्दा हँसता !!

तरल स्वर्ण की केसर द्युति ले
लाल लाल भू का प्रान्तरः
लाल लाल तह पर तह उद्भिज
खानिज जीवन-क्रम उर्वर !!

लाल लाल घासें लहराती,
लाल लाल अंकुर उगते !
लाल लाल अदृश्य वलय में
लाल लाल अभिनय पलते !!

तरल स्वर्ण की केसर द्युति ले !!
लाल लाल रण की सज्जा !!
लाल लाल झनकार झनकती !!
लाल लाल फहरती ध्वजा !!

लाल लाल सपने स्वर सजते !!
लाल लाल प्रणयी बन्धन !!
लाल लाल गात मति, स्मिति, आंसू
लाल लाल उर की धड़कन !!

तरल स्वर्ण की केसर द्युति ले
लाल लाल गाता त्रिकालः
"राजस्थान अमर बेला जय
जय केसरिया विश्व-भाल !!

३५

अनदेखा

देखे हैं कितने प्रलय-वलय,
उल्लास-लास, उच्छल उमंग,
विद्युन्मय मेघों का गर्जन,
उत्ताल ताल सागर-तरंग !

देखे हैं युग-विप्लव अनेक,
युग - परिवर्तन, युग - महासमर !
देखे हैं गुरु गौरव कितने
उत्सर्ग, शौर्य, शुचि सुषमाकर !!

देखे हैं कितने समारोह,
रहसित, प्रहसित अगणित रेला
पर देखा कहीं न उनमें भी
केसरिया बेला का मेला !!

: ३६ :

सुषमा मधु

विविध उर्वशी, रम्भाओं ने,
कितनी नूरजहाओं ने
सुषमा की मधुहाला छक दी
जीवन के कोने कोने !

पीने वालों की आंखों में
बदल गयी रंगत जग की
कुछ पन्ने इतिहासों के भी
रंगे गए द्युति ले नग की !

टूट गयीं कितनी समाधियाँ
आस्था नारद की बिखरी !
हुस्न साकियों के कमाल पर
गानो की लड़िया लहरीं !

क्या शुरूर था जिससे सागर
तम बासंती फैल गये !
समझ न पाये चलने वाले
वे कैसे किस गैल गये !

याद पद्मिनी की होगी ही,
साकी का वह मंच अमर !
कैसी हाला हुलस पिलायी
हुआ प्रात युग-रात बिखर !

किस जीवन ने पिया न उसको,
किसका होग न हुआ हरा ?
कुछ ही कण तो इन शब्दों के
मूक कंठ है उतरा !

नूरजहाँ कुछ नूर चाहती,
ताज चाहता ताजमहल।
राजस्थानी हाला दे दो
अपने रज कण से उज्वल।

: ३७ :

क्या जानो !

तुम वेश सजाना क्या जानो !
जो ज्वाला को चंदन कर दें,
खर धारों में चुम्बन भर दे,
ऊषा-संध्या के अमिट रंग
केसरिया को तुम क्या जानो !
तुम प्रेम लगाना क्या जानो ॥

चिकनी चमड़ी पर दीवाना,
क्या प्रेम यही हो परवाना ?
तुम स्नेहमयी के हाथों से
राखी बँधवाना क्या जानो !

तुम भेंट चढ़ाना क्या जानो !
फूलों की माला कर अर्पण
करते हो नित देवाराधन,
निज हाथ काट निज मुण्डमाल
प्रिय को पहनाना क्या जानो !!
तुम स्वाद अमृत का क्या जानो !

घेवर, पूआ, अंगूर, सेव
खाने की तुमको सदा टेव;
भूखे वनवासी घासों की
टुक रोटी खाना क्या जानो !!
तुम जय मख करना क्या जानो !
साकला और घी लाखों मन
वेदी पर करते मंत्र हवन,
आनों पर ललकित हो, साढ़े
चौहत्तर होना क्या जानो !!
तुम भस्म रमाना क्या जानो !

कुछ लकड़ी उपले जला लिये,
निर्जीव क्षार ले रमा लिये।
लाखों रुहें हों मचल रही
जिस्में लाखों अरमान लिये,

मुखरित रहतीं जिनकी मीड़ें
उत्सर्ग प्रणय का गान लिये
भवभूति रमाने वह पावन
तुम जौहर होना क्या जानो !!

तुम केतु उड़ाना क्या जानों !

पट एक यष्टि में बाँध दिया;
आ किसी वायु ने हिला दिया,
उनचासों पवन मचल जाये,
झंडा तूफान उड़ा जाये,

वह मंत्र सामिधेनी का तुम
आवाहन करना क्या जानो !!

●

: ३८ :

अद्भुत् खानिज !

मैं आया भूगर्भ-ज्ञान हित
राजस्थानी अंचल में:
क्या खानिज क्रम, क्या पदार्थ हैं
संचित तह तह में तल में।

लेकिन मिला अपूर्व द्रव्य यह,
जिसे न वाणी कह सकती:
यहाँ एक अद्भुत खनिज की
जीवन धारा है बहती :

भू की तह तह में अनन्त तक
लहरी एक अजब लाली,
तरल स्वर्ण की केसर द्युति है
तन मन में जिसके ढाली !!

स्वतंत्रता की अमर आन ने,
विश्व प्रेम के गौरव ने
बार बार तर कर डाला है
कण-कण शोणित से अपने !!

कण कण में झण्डा फहराता !!
क्षण क्षण गाता गान अमर !!
कण कण में जौहर जलता है,
उड़ते परिमल कण जी भर !!

कण कण में रण सज्जा होती !!
कण कण में रण का प्रयाण !!
कण कण में मारु रव बजते,
ताण्डव करते रूद्र प्राण !!

कहीं घहरते गोरा बादल
और कही पत्ता-जयमल !!
कहीं रूद्र रव चूड़ावत का
बरस रहा है झंझानल !!

धन्य धन्य राणा प्रताप की
उठती जय जयकार कहीं !!
विद्युद्वेग अमर चेतक का
मचता हाहाकार कहीं !!

एक वंश की सभी पीढ़ियाँ,
कल्पद्रुम की शाखायें
कण कण में क्रीड़ा करती हैं
अद्भुत गौरव गाथाएँ !!

लिखने मैं विज्ञान चला था,
पर कविता के स्रोत बहे:
एक अकंटक राज्य पा गया
चला ढूँढ़ने जो गदहे !!

●

: ३९ :

वनश्री

वायु मंद पड़ रहा, क्षितिज पर
जाने की वेला आयी।
पर समेटने लगे विहग अब,
नीड़ों की प्रिय सुधि आयी।

अंग शिथिल श्रमिकों के होते,
रण के जय जयकार शिथिल।
रंग सुनहली किरणो के भी।
हुए चंपकी से, झिलमिल।

दूर प्रतिध्वनि सी झरनों की
झिर झिर, स्रोतों की टलमल !
अति सुदूर विद्रित स्मृति का श्लथ
तनता मानस पर अंचल।

विरह, श्रांति ले साँझ अप्सरा
उतर रही नभ से कोमल।
पीछे रजनी आती, निद्रा,
स्वप्न राशि बाँधे अंचल।

जर्जर तन राणा प्रताप अति
अमर अर्वली के अंचल
तृण आसन पर बैठे चिन्तित,
मांथित उनका अन्तस्तल।

कमलासन, युग हस्त पदों पर
नयन मुंदे रह रह खुलते।
अडिग शौर्य की इस समाधि पर
अचलों के आसन हिलते।

सूखी, धंसी हड्डियां सारी
सुदृढ़ सीकचों सी अब भी।
देश विश्व का चिर जीवन-रस
बढ़ता ही जा रहा अभी!

विगलित तन की महा विजय पर
किरणें होती बलिहारी!
ओत प्रोत किस तन्मयता में
है उनकी ममता सारी।

रुक रुक कर नि:स्वास निकलते
उलझी ही सुलझन लेकर।
अरे महामानव! कितना यह
प्रश्न तुम्हारा हैं... दुस्तर?

कितने कालकूट का अद्भुत्
अमृत अमित पीकर बैठे?
महाशौर्य! यह आज, बतादो,
किस समाधि में हो पैठे?

एक लिंग की अमर आन यह,
महारुद्र का यह ताण्डव,
किस चिंतन में बैठा है यह
मौन मौन कैसा शैशव ?

मुरझायी जाती हैं घासें,
आनन क्यों मुरझाया है ?
अस्त्र पास में पड़े हुए हैं,
जी उनका घबराया है।

चूक पूछते, उन्हें उठा लो,
दिल न टूट जाये उनका
विजया जग से रूठ न जाये,
आज विकल है मन उसका !

आज पवन है शिथिल हो रहा,
ले उनचासों पंख चपल !
आज विलय होने जाता है
जीवन का अक्षय संबल !

स्वर्ग और भूतल का नाता
आज टूटने जाता है !
यह विस्फोट भयंकर कैसा
आज फूटने जाता है ?

महा तपस्वी आँखें खोलो
जीवन दीप बुझा जाता !
तार टूटते है वीणा के,
जग का गान भुला जाता !
... ...

डोल उठा मारुत उसाँस ले !
अखिल अर्वली सिहर उठा !
खुले बंद लोचन योगी के,
मंद मंद स्वर लहर उठा:

"वह दिन तुमको याद अर्वली,
जब इस अंचल में आया।
प्यार भरी माँ की गोदी का
आश्रम मैंने था पाया।

आन लिये जो आया था मैं,
क्या न किया उसका पालन!
क्या इस मन में कभी हुआ था
स्वार्थ और सुख का मंथन?

कभी हुए ये निद्रित भी दृग,
क्या कुछ खाने को माँगा?
क्या जननीं का अलख जगाकर
मैं न अहर्निशि है जागा?

क्या ये बच्चे राजभवन के,
राजमहल की यह रानी
अलख न सतत जगाते, रजकर
भूख-प्यास की मनमानी!

क्या न बिलाव तुम्हारे आकर
सहसा प्राण झपट लेते!
भूखे शिशु के मुख की रोटी
अपने मुख में कर लेते?

देखा देव, न निज आँखों से?
कह दो और सहूँ मैं क्या?
सो भी कैसे, कितनी रोटी
देते तुम्हीं, कहूँ मैं क्या?

स्वप्नों में भी प्राण न आकुल
बलि चढ़ने को तो बहनन?
घर से अभी निकालो हमको
स्वयं छोड़ दें हम आँगन।

और इष्ट कर्तव्य हमें जो
निःसंकोच कहो हमसे।
जितना जी चाहे हे अच्युत !
तप, आराधन लो हमसे।

लटका दो यह तन उलटाकर,
अस्त्र चुभें या ज्वाल सतत।
तिल तिल तर्पण हो शोणित का
युग हो अथवा कल्प विगत !

एक एक यह बूँद रक्त की,
एक एक उर की धड़कन
स्वतंत्रता ही माँग रही है,
एक लिंग पर है अर्पण।

बोलो देव, नहीं तो राणा
अभी विदा होता तुमसे।
क्षमा मुझे देना जो पावन
गात अपूत हुआ मुझसे !"

अखिल बनाली सिहर उठी द्रुत,
एक भव्य सुस्मिति फूटीः
संध्या की बेला में प्रमुदित
उषा की किरणें फूटीं।

एक वृद्ध साकार सुरभि सा
प्रात कमल बन वैभव सा
सुभग वनश्री के प्रान्तर से
यशः शोभ निकला सहसा।

एक विपुल धन-राशि पुलक कर
प्रस्तुत राणा के आगे
बोला उसके रोम रोम में
किस श्रद्धा के सुख जागे ?

"यह मैं भामा शाह खड़ा हूँ,
सेवा चरणों में रखकर।
मेरा सब परिवार पला है
अन्न आप का ही खाकर।

यह धन पूज्य! आप का ही है
चरणों पर सादर अर्पित!
जननी की मुख लाली रक्खें
सैन्य शक्ति कर एकत्रित

बापा रावल कुल सिसौदिया
गौरव तो है अजर अमर,
लेकिन उसमें भी जोड़ा है
चार चाँद तुमने सुन्दर।

राजस्थान अमर भूतल पर,
पाया इसे कहा जग ने
लेकिन उसमें भी बिचित्र ही
लाली घोली है तुमने।

कठिन तपस्या की है राजन!
उड़ा स्वर्ग में है परिमल!!
वाणी की वीणा में, कवि के
पन्नों में असीम हलचल।"

फूल लगे झड़ने वृक्षों से
पवन पुलक भर लहराया
केसरिया अर्वली शिखर
फर-फर फर-फर फहराया!!!

"भामा शाह, कहा राणा ने,
तुम हो जौहर इस जी के,
सुमन बनश्री शुद्ध सिद्धि श्री
राजस्थान अर्वली के!!"

: ४० :

रजपूती आन

वह विभूति है तेरे तन में
जिसके कण कण में सुरभित,
शीतल ज्वाला धधक रही है,
लिये हुलसते प्राण अमित !

पूत, परात्पर गौरव-गरिमा,
सुषमा जिसमें है विलसित;
और अमरता उमँग-उमँग कर
अमित हिलोरें ले हुलसित !

विद्युत वह केसर पट है
जिसके रग-रग में अगणित
रण-सज्जा शृंगार भरे हैं
जौहर, आशीर्वाद अमित;

उत्सर्गों के पूत रक्त से
बार बार जो तर कण-कण;
रंजित हो अनुराग राग से
हुलस रहा जिसका क्षण-क्षण !

राखी बांधी तेरे कर में
अमर स्नेह का है शजरा !
कौन बताये इसमें कितना
बहनापा, भ्रातृत्व भरा !

संध्या को ले सुभग अंक में
उषा ज्योति जो लहराये,
उसी ज्योति की विजय ध्वजा है
जिसने राग अमा गाये;

जिसमें बसे पवन उनचासों
हुलस रहे करते सन-सन !
वह तू करती आज युगों के
क्षीर सिंधु में शेष शयन !

हे रजपूती आन ! नहीं है
शेषशयन की यह बेला !
शेषशयन नत जिस पर वह है
तेरी केसरिया बेला !!

: ४१ :

अचूक औषध

मानव रे तू अधम स्वार्थ में
हर दम डूबा जाता
विश्व-परिधि का अपने हा में
तू क्यों खोया जाता ?

पथ क्या चलता, नहीं एक भी
चिन्ह शेष रह जाता ?
किस सुषमा पर रीझा करता,
गान न कुछ रह जाता ?

कायरता के विषम जाड़ से
थर थर कांपा करता।
जीवन की मधुवेला में ही
मुख को ढांका करता।

आओ जीवन; भर लो जीवन,
जीवन में नव मधु भर लो !
स्वर्ग, मुक्ति, निर्वाण सभी कुछ
जीभर आलिंगन कर लो !

परम सिद्ध योगी बैठा है
देखो राजस्थान अमर !
राख रमा लो तन-मन में प्रिय !
पावन धूनी से लेकर !

: ४२ :

इतिहास की भाषा में

"अरमान, आन, आशाएँ सब
लेकर जब जीवन मचल उठे
निर्भीक निछावर होने को
पूनम पयोधि सा हुलस उठे;
हो जाता जहाँ निछावर वह,
रहती न तमन्ना कुछ बाकी,—
मैं यहीं पूछने आया हूँ :
उसको क्या कहते हैं साकी ?"
"मंजिल आखीरी है वह तो :
वेदान्त मुक्ति उसको कहता;
निर्वाण बुद्ध; इतिहास उसे
केसरिया वेला है कहता।"

: ४३ :

एक कण

"सबसे बड़ी नियामत क्या माँ
अमित प्रेम में दे सकती ?"
"वह विभूति बेटा जिसकी कुछ
समता कहीं न हो सकती !!
यह लो राजस्थान भूमि की
मिट्टी का पावन रज-कण !!
सब कण ऐसे ही हैं इसके,
युग बांधे हैं जीवन-क्षण !!"

कण कण में असीम सुषमा ले
विलसित एक अमर संस्कृति !!
हुलसित अमर सुहागिनियों का,
माँ-बहनों का प्यार अमित !!

अनगित अर्पित मालाओं से
निकल रही है गंध मलय !!
अयासही बनते जाते हैं
गाथाओं के छन्द-वलय !!

भर हुलास शृंगार साज निज
रण-सज्जा होती हँस-हँस !!
रण प्रयाण होता उमंग भर,
चिता दहन भी हुलस हुलस !!

प्रेम गान-गुंजन, झंझा
चमक दमक है प्रलयंकर !!
झूम रहे मचले मानव से
निर्झर, स्रोत तथा तरुवर !!

मंद-मंद मलयज चलता है,
हा हा कर उनचास पवन !!
यह श्मशान कैसा है जिसमें
जीवन का ऐसा गुंजन !!

हैं अखण्ड तप, त्याग, समर्पण
उठे स्वर्ग से भी ऊपर !!
सोख लिया है, पी डाला है
कण कण ने शोणित सागर !!

इतनी बड़ी सुधांशु-किरण सी
कहीं न अमल अनल ज्वाला !!
इतनी ऊंची ध्वजा न, ऐसी
फहर, न ऐसा उजियाला !!

इस 'एटोम' में एटम बम की
रंगत फीकी पड़ जाती !!
मौत सौत सी मरी, अमरता
झण्डा फर-फर फहराती !!

●

: ४४ :

पाठक गण

यही थोड़ी सी राख अलभ
इसी मिट्टी के कुछ लघु कण
दे रहा मैं भी प्राण-सुमन !
प्रेम श्रद्धा से अति मुद मन !!

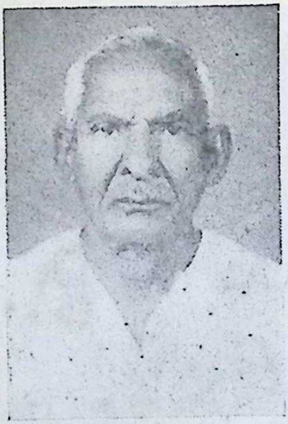
इन्हें प्राणों की धड़कन में,
धमनियों में द्रुत कर देना !
इन्हीं में मन को, आत्मा को
डुबा कर समरस कर लेना !!

मौत का अमर शलभ हूँ मैं,
दे रहा एक अमर मेला !!
इसे लो, बोलो जय-जय-जय !!
यही है केसरिया वेला !!!

●

Ze9 832
(2+ E8 7

कवि की संक्षिप्त जीवनी—



श्री सौरभ जी का जन्म स्थान, बावतपुर हवाई अड्डे के समीप, ग्राम चिउरापुर, जिला वाराणसी एवं जन्मकाल है सन् १६०१ ई०। ये उदय प्रताप कालेज में अध्ययन करते रहे। फिर कानून की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर वाराणसी में ही कानून की प्रैक्टिस करते रहे। फिर स्टेटों में कुछ वर्षों तक कोर्ट इन्सपेक्टर रहे। सन् १६३३ में ये सब कुछ छोड़कर साहित्य सेवा में संलग्न हो गये। तभी से दिन के प्रथम भाग में लिखना और अपरान्ह में अध्ययन करना इनकी अटूट दिनचर्या चली आ रही है और अन्त तक संभवतः रहेगी। इन्होंने हिन्दी तथा अंग्रेजी साहित्य का गहन अध्ययन किया है और संस्कृत साहित्य की जानकारी प्राप्त की है। इन्होंने अपना जीवन ही साहित्य के लिए समर्पित कर दिया। सौरभ जी अपनी रचना में इतना आत्मविभोर हैं कि पंक्ति-पंक्ति में, शब्द-शब्द में उनकी आत्मा स्पंदित एवं ओतप्रोत है। कवि की सहज प्रतिभा तथा प्रवृत्ति ने उसकी रचना को बहुत ऊँचा उठा दिया है। इनकी कृतियाँ दीर्घ साधना, सचाई एवं तन्मयता का प्रतिफलन है। वे स्वयं आप सहृदयों की अपना परिचय दे मेरे कथन की पुष्टि करेंगी। ……मैं सौरभ जी की रचना पर उनकी हृदय से बधाई देता हूँ।

—श्रीकृष्णचन्द्र बेरी

कवि की प्रकाशित कृतियाँ

मंजिल कहाँ ?	उपन्यास	लाल साहब	उपन्यास
वाह रे आँसू !	,,	साधना	नाटक
दूर के दीप	,,	सती हाड़ीरानी	प्रबन्ध-काव्य
स्वर्ग की झाँकी	,,	युगपुरुष	महाकाव्य
बसंत	,,	हरियाली	काव्य-मुक्तक